सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म
का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 52; अंक : 3
जून 2019

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.

अमृतकण

धर्मो रक्षति रक्षत:

वेद: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:।
एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र), सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अनुसार कार्य करना यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण (धर्म का बोधक) कहा गया है।

◆ ◆ ◆

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

धृति, क्षमा, दम (अपने मन को वश में रखना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाह्य और आभ्यान्तर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि), विद्या (आत्मविद्या), सत्य (वाणी और मन की यथार्थता) और अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस धर्म के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति य:।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।

एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और सब तो शरीर के नाश के साथ ही उसको त्यागकर अन्यत्र चले जाते हैं।

◆ ◆ ◆

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित:।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

नष्ट (अरक्षित) हुआ धर्म ही मनुष्य को मार डालता है और वही रक्षित होने पर मनुष्य की रक्षा करता है। इसलिए नष्ट हुआ धर्म कहीं हमको न मार डाले एतदर्थ धर्म का नाश नहीं करना चाहिये।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 52
अंक 3

जून
2019

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य,
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसार हेतुरपि यः पुनरन्तकास्तं,
शकरं शरणदं शरणं व्रजामि।

अर्थात्

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के कर्ता और इसे अपने किए हुए कर्मो के अनुसार सुख–दुख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा अन्तराल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	श्रीमती शान्ति शर्मा का क्षयरोग छूमंतर– जगदीश राए बंसल	13
4.	श्री गुरु–महिमा– श्री रामयश उपाध्याय	17
5.	योग का तात्पर्य और चरित्र–निर्माण– महन्त श्री अवैद्यनाथ जी महाराज	21
6.	यौगिक प्रश्नोत्तरी– पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा	24
7.	योगासन करने से पूर्व– द्वारा योग प्रशिक्षण केन्द्र	30
8.	प्रतीकोपासना	37

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

प्राणायाम का फल

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

'सिद्धयोग' के कई अंकों में प्राणायाम विषयक चर्चा की जा चुकी है। प्राणायाम की परिभाषा क्या है, प्राणायाम का अधिकारी कौन है, कितने प्रकार के प्राणायाम किस विधि से किए जाते हैं। देश–काल संख्या के भेद से दीर्घ और सूक्ष्म किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है, आदि–आदि विषय पिछले लेखों में बताये जा चुके हैं। प्राणायाम करने वाला योगी प्राण वायु पर पूरा–पूरा नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है। और देह में रहने वाले भिन्न–भिन्न प्राणों पर नियन्त्रण करने पर विभिन्न प्रकार के फलों को प्राप्त करता है। वैसे तो सारा शरीर ही प्राण के द्वारा चलाया जाता है। शरीर का कोई अंग–प्रत्यंग ऐसा नहीं है जहाँ पर प्राण की गति न हो। शरीर का कोई अंग प्रत्यंग प्राण की गति से खाली हो जाता है तो वह मृत कहलाता है। प्राण–रहित शरीर का अन्त ही हो जाता है। और वह भस्मांतावशेष कहलाता है। यदि शरीर में व्यापक प्राण अपनी गतियों को ठीक रखता है, और अभ्यासी योगी युक्ताहार विहार से युक्त होकर अपने प्राण–वायु पर सरलता से नियन्त्रण रखता है। तो वह अजर–अमर हो करके सदा सुखी रहता है; भगवान श्रीकृष्णजी ने गीता में यह आज्ञा दी है कि योगी को युक्ताहार–विहार होना चाहिए।

युक्ताहार विहारस्य, युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जो योगी अपने नियम के पक्के हैं। ठीक समय पर खाते हैं ठीक समय पर सोते हैं आहार–विहार पर पूरा नियंत्रण रखते हैं उनका किया हुआ अभ्यास सब प्रकार से दुःखों का नाशक होता है। शरीर में प्राण–वायु के स्थान बहुत अधिक हैं। इनमें से योगाचार्यों ने प्राण वायु के 5 स्थानों का ही अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है। जिन पर नियंत्रण करना योगी को परमावश्यक होता है। शरीर में प्राण वायु के जो यह 5 केन्द्र हैं; वे इस प्रकार से हैं–

हृदि प्राणो गुदेऽपानः, समानो नाभि मण्डले।
उदानः कण्ठ देशस्थो, व्यानः सर्व शरीरगः।।

अर्थात् प्राण वायु का स्थान हृदय है, अपान का गुदा, उदान का कंठ देश, समान का

नाभि मण्डल एवं व्यान वायु सब शरीर में व्यापक रहता है प्राणायाम को अभ्यासी को कम से कम इन 5 स्थानों पर अपना नियंत्रण प्राप्त कर लेना चाहिए। प्राण के इस शरीर में ये 5 मुख्य केन्द्र हैं, जिन पर नियंत्रण प्राप्त कर लेने पर योगी प्राणजयी बन जाता है। इसके अतिरिक्त जिस समय मनुष्य अपनी साधना के बल से प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है और पिछले लेखों में लिखी विधि के अनुसार कुम्भक का अच्छा अभ्यास बढ़ा लेता है तो वह योगी अपने प्राण को जहाँ जिस नाड़ी में संकल्प करके रोकना चाहेगा तो अवश्य ही रोक लेगा। जिस प्रकार से एक निशाना लगाने वाला निशानची अर्थात् लक्ष्य भेदी लक्ष्य–भेदन का परिपक्व अभ्यास बन जाने के बाद अपने लक्षित लक्ष्य को भेद डालता है इसी प्रकार से प्राणायाम के अभ्यासी कुम्भक जय कर लेने के बाद चाहे जहाँ जिस नाड़ी एवं स्थान में प्राण वायु को रोकना चाहता है तो वह अवश्य–अवश्य रोक लेता है। उपरोक्त श्लोक में हृदय देश में प्राण का स्थान बतलाया गया है। हृदय शरीर का केन्द्र है, यहाँ के प्राण वायु से ही सारे शरीर में प्राण की गति का संचार होता रहता है। मनुष्य ज्यों–ज्यों कुम्भक का अभ्यास बढ़ाता है त्यों–त्यों रजोगुण का और तमोगुण का प्रभाव नष्ट होकर सतोगुण चमकने लगता है और ज्यों–ज्यों सत्व का प्रकाश बढ़ता है त्यों–त्यों प्रकाशावर्ण क्षय होने लगता है। इसीलिये प्राणायाम का फल बतलाते हुए भगवान् पतञ्जलिदेव ने–

'ततः क्षीयते प्रकाशावर्णम्'।

इस सूत्र का उल्लेख किया है। इसी सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यास देव जी ने अपने भाष्य में निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी हैं।

प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणायं कर्म, यत्तदाचक्षते 'महामोहमयेनेन्द्रजालेन् प्रकाशशीलं सत्त्वमावृत्य तदेवाकार्य्ये नियुङ्क्ते इति, तदस्य प्रकाशावरणं कर्म संसार निबन्धनं प्राणायामाभ्यासाद् दुर्बलं भवति, प्रतिक्षणं च क्षीयते तथा चोक्तं 'तपो न परंप्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य' इति।।५२।।

अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करने वाले योगी को प्राणायाम के बल से विवेक ज्ञान के रास्ते के आवरण का जो कर्म है वह नष्ट हो जाता है। उस आवरण के नष्ट न होने से प्रकाश शील सत्व को ढँक कर के कर्मजाल की प्रवृत्ति में मनुष्य को रज–और तम नियुक्त करते हैं। सो प्राणायाम का अभ्यासी अपने अभ्यास के बल से उस सब को क्षय कर डालता है और उसकी ज्ञान–दीप्ति होती रहती है। इसीलिए हमारे शास्त्रों में प्राणायाम से बढ़कर किसी और तप को प्रधानता नहीं दी गई है। योगियों ने प्राणायाम को ही महान तप माना है। प्राणायाम करने से प्रकाशावर्ण क्षय होकर विशुद्धतम ज्ञान की दीप्ति होती है। ज्ञानदीप्ति हो जाने पर योगी के

लिये दूर दर्शन, दूर श्रवण, दूर स्पर्शन, आदि–आदि सब क्रियायें स्वभाव से ही होने लगती हैं। उस योगी के अन्दर यह शक्ति स्वामाविक आ जाती है यदि वह चाहे तो यहाँ बैठा ही चन्द्र मण्डल का स्पर्श कर ले एवं यहाँ बैठा हुआ ही हजारों कोसों की बातें सुनें और वहाँ की स्थिति को देख ले। ये सब सिद्धियाँ प्राणायाम के बल से योगी को आत्मसाक्षात्कार से पहले ही होने लगती हैं। इसी प्रकार का निर्देश मनुस्मृति में स्पष्ट शब्दों में किया है।

दह्यन्ते हि ध्मायमानानां,

धातुनां यथा मलाः।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते मलाः।

प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् जिस प्रकार सोना–चाँदी आदि धातुओं के पकाने से धातुओं के मल जल जाते हैं उसी प्रकार से प्राणायाम करने से इन्द्रियों के मल जल जाया करते हैं। और ज्यों ही योगी के इन्द्रियों के मल जल जाया करते हैं त्यों ही दिव्य–श्रवण, दिव्य दर्शन एवं दिव्य स्पर्शन आदि क्रियायें योगी को स्वाभाविक होने लगती हैं। योगियों ने प्राणायाम को महान तप माना है। और योग दर्शन में भगवान पतञ्जलिदेव ने तप के फलस्वरूप कायिक एवं ऐन्द्रिय सिद्धियों का स्वभाव से ही उपलब्ध हो जाना लिखा है। देखिये साधनपाद सूत्र नम्बर ४३ में काय ऐन्द्रिय सिद्धि का कितना स्पष्ट निर्देश भगवान पतञ्जलिदेव ने किया है–

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।।४३।।

इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी ने अपनी निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी हैं–

निर्वर्त्यमानमेव तपो हिनस्त्यशुद्ध्यावरणमलं तदावरणमलापगमात् काय सिद्धिः अणिमाद्या, तथेन्द्रियसिद्धि दूराच्छ्रवणदर्शनाद्येति।।४३।।

अर्थात् योगी को तप के प्रभाव से इन्द्रियों के मल जल जाने पर अणिमादिक अष्ट–विधि ऐश्वर्य एवं ऐन्द्रियसिद्धि दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि स्वभाव से ही उपलब्ध हो जाया करती है। प्राणायाम के निर्मल फल को पा कर योगी अपनेआप को कृतकृत्य बना लेता है। प्राणायाम करने वाले अभ्यासी योगी को कुम्भक सिद्ध हो जाने के बाद जहाँ के प्राण वायु पर जो जय प्राप्त करता है उसका फल उसको तत्काल ही अनुभूति में आने लगता है। आवश्यकता इस बात की है कि योगी अपनी प्राण शक्ति पर इतना नियंत्रण प्राप्त करे जिससे दूसरे किसी स्थान पर संयम करने में उसको विलम्ब मालूम न पड़े। ज्यों ही वह अपने मन को किसी स्थान विशेष में लगाना चाहे तो तत्काल लगा सके। हम ऊपर के श्लोक में बता चुके हैं–कि प्राण का स्थान हृदय है और उदान का स्थान कंठ देश है तथा समान का स्थान नाभी–मंडल है,

अपान का स्थान गुद प्रदेश है। भगवान पतञ्जलिदेव ने बिल्कुल स्पष्ट किया है–

उदानजयाज्जलपंक कण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च।।३९।।

अर्थात् उदान वायु पर जय प्राप्त कर लेने पर योगी का जल पंक कण्टकादि में असंग हो जाता है और स्वभाव से ही उत्क्रान्ति होने लगती है। देखिये इस सूत्र पर व्यास भाष्य–

समस्तेन्द्रियवृत्तिः प्राणादिलक्षणा जीवन, तस्य क्रिया पञ्चतयी प्राणोमुख–नासिका–गतिराहृदयवृत्तिः, समं नयनात्समानश्चानाभि वृत्तिः, अपनयनादपान आपादतलवृत्तिः, उन्नयनादुदान आशिरोवृत्तिः, व्यापी व्यान इति, तेषां प्रधानं प्राणः, उदानजयाज्जल पंककण्ट कादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च प्रयाणकाले भवति तां वशित्वेन प्रतिपद्यते।।३९।।

अर्थात् समस्त इन्द्रियों में शक्ति रूप से व्याप्त रहने वाली प्राण की ५ भिन्न वृत्तियाँ हैं।

प्राणोमुखनासिकागतिराहृदया वृत्तिः

प्राण, मुख और नासिका तक गति करता है और उसकी गति हृदय तक रहा करती है। तथा समान वायु नाभिवृत्तिः है अर्थात् वह नाभि तक गति करता है और इसी प्रकार से अपान वायु पादतल वृत्ति है। अर्थात् अपान का अधिकार गुदादेश से पैर तक रहता है और उदान वायु आशिरो वृत्ति है अर्थात् कण्ठ देश से लेकर सिर भाग तक उदान का अधिकार रहता है। और व्यान वायु सारे शरीर में व्याप्त रहने से सर्वत्र व्याप्त रहता है। जो योगी प्राणायाम के अभ्यास से उदान वायु पर जय प्राप्त करता है वह जल, पंक, और कण्टकादियों में बिल्कुल असंग रहा करता है। और प्रयाण काल में उर्ध्व गति को प्राप्त करता है। योगाभ्यास करने वाले योगियों को प्राणायाम के बल से उर्ध्व गति प्राप्त होना तो स्वाभाविक ही है क्योंकि प्राणायाम करने से रज और तम का नाश हो जाने से योगी सत्वस्थ हो जाता है। और सत्वस्थ व्यक्ति के लिये जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं आज्ञा दी है कि–

उर्ध्वंगच्छन्ति सत्वस्था

मध्ये तिष्ठन्ति राजसा

जघन्य गुण वृत्तिस्था

अधोगच्छन्ति तामसा।।

अर्थात् जो व्यक्ति अपने जीवन काल में सत्वस्थ हो जाते हैं वे लोग उर्ध्व गति को प्राप्त करते हैं अर्थात् ऊपर के दिव्य लोकों में वास किया करते हैं। रजोगुण प्रधान व्यक्ति मध्यम लोक मनुष्य लोक में और तम प्रधान व्यक्ति नीचे के निकृष्ट लोकों में वास किया करते हैं। जो योगी उदान वायु पर जय प्राप्त कर लेते हैं वे लोग जल पंककण्टकादि में तो असंग हो ही जाते हैं। साथ ही प्रयाण काल में उर्ध्वगामी भी अवश्य हो जाते हैं।

हमारी भारत भूमि में ऐसी घटनायें घटित होती रहती हैं, जिनके सुनने और देखने से अनायास ही शास्त्रीय सिद्धान्तों की पुष्टी हुआ करती है। अभी कुछ वर्ष पहले ऋषिकेश में एक इसी प्रकार की घटना घटित हुई थी, जिसको देखकर के वहाँ के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। चन्द्रभागा नदी में श्रीगंगाजी के तट से लगभग आधे फर्लांग की दूरी पर श्रीचन्द्रेश्वर महादेव का एक मंदिर है। श्रीचन्द्रेश्वर महादेवजी के मन्दिर के बिल्कुल सामने श्रीगंगा जी के उत्तर तट पर पहाड़ों की शृंखला है, उसको वहाँ के वासी वसुधारा का पहाड़ कहते हैं। गंगाजी के इस पार से यदि कोई वसुधारा कहकर के ऊँचे स्वर से ध्वनि लगाता है तो वह ध्वनि प्रतिध्वनित हो करके आकाश में गूँजती हुई सुनाई देती है। मालूम पड़ता है कि पहाड़ में से किसी ने उस ध्वनि का उत्तर दिया हो। श्री चन्द्रेश्वर भगवान के पूजनार्थ आये हुए एवं गंगा तट पर स्नान करने वाले व्यक्तियों ने वहाँ एक बड़ा भारी आश्चर्य देखा और वह यह–कि श्री गंगा जी के उत्तर तट से एक पवित्रात्मा महात्मा गंगा जल पर, इस प्रकार चले आ रहे हैं जैसे कोई व्यक्ति साधारण रूप से स्थल पर चला हुआ आया करता है। महात्मा शनैः शनैः गंगाजी के इधर वाले तट पर आ पहुँचे किन्तु ज्यों ही लोग उनके चरणों को स्पर्श करने को दौड़े त्यों ही वे जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार अपने पाद तलों से गंगा जल पर चलते हुए वापिस पहाड़ में चले गये। इस घटना को देखने में अपने आश्रम के प्यारे सत्संगी बच्चे लाला रंगीलाल अग्रवाल भी शामिल थे।

'उदानजयाज्जल कण्टकादिष्वसंग'

का प्रत्यक्ष उदाहरण मिल गया। इसी प्रकार से योग दर्शन में समान वायु के लिये भी बिल्कुल स्पष्ट उल्लेख है कि–

समान जयाज्ज्वलनम् ।।४०।।

जितसमानस्तेजस उपध्मानं कृष्ण ज्वलति।।

अर्थात् समान वायु पर संयम के द्वारा जय प्राप्त कर लेने पर योगी अग्नि के समान दीप्तिमान हो उठता है। इसके उदाहरण भी समय-समय पर साधकों के शरीरों में घटित होते रहते हैं। अभी कुछ ही वर्ष पहले की बात है कि युक्त प्रान्त के अन्तर्गत जिला एटा के एक कस्बे गंजडुंडवारे में एक पवित्र सन्त गुरुद्वारे में निवास करते थे। वह सिक्ख थे और गुरु नानकदेवजी की उपासना विधि से अपने आपको योग ध्यान परायण रखते थे सभी के शरीर नश्वर हैं। तत्व विजयी योगी लोग कल्पों तक अपने जीवन को धारण कर लेते हैं किन्तु जिन्होंने तत्वों पर विजय प्राप्त नहीं की वे कालावधि आने पर अपने नश्वर देह को त्याग ही देते हैं। इन संत के भी प्रयाण का समय आ गया। इन्होंने लोगों के सामने विलक्षण विधि से

अपनी देह का त्याग किया। इनके संकल्प मात्र से ही इनके नाभि मण्डल से अग्नि की एक लपट निकली जो इनके शरीर के आसपास घूमती रही। अग्नि की उस लपट ने थोड़ी देर में ही उनके शरीर को भस्मावशेष कर डाला। और—समान जयाज्ज्वलन के उदाहरण को और भी ऊँची गति से स्पष्ट करके दिखला दिया। साधक अपनी तीव्रतम साधना के फलस्वरूप एवं प्राणायाम के द्वारा अपने जीवन को संयमित करके इन क्रियाओं के विशिष्ट फल को प्राप्त कर सकते हैं। संयम राजयोग से भी प्राप्त किया जा सकता है और प्राणों पर नियंत्रण करके अद्‌भुत कर्मों वाला योगी **'कर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुम्'** की ताकत वाला होता ही है इसमें यत्किञ्चित् भी विचारने की बात नहीं है। 'सिद्धयोग' के कई अंकों में प्राणायाम का विषय लिखा गया किन्तु साधक को चाहिये कि लेखों के आधार पर इस कठिन विद्या को आरम्भ न कर दे। अनुभवी शिक्षक का सानिध्य प्राप्त करना साधक के लिये बहुत ही आवश्यक है। यदि अनुभवी गुरु मिल जाता है तो साधक की साधना में सफलता अवश्य ही होगी।

श्री रामलाल प्रभवे नमः

कार्यक्रम सूचना

यह सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि अपने **श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश** में 9, 10, 11 और 12 जून 2019 तदनुसार रवि, सोम, मंगल तथा बुधवार को **चार दिवसीय कार्यक्रम** का आयोजन किया जा रहा है। आश्रम की स्थापना को 100 वर्ष हो चुके हैं इसलिये इस वर्ष तीन दिन की बजाय चार दिन का आयोजन रहेगा। सभी गुरु भक्तों से आग्रह है अवश्य ही कार्यक्रम में शामिल होकर उत्सव की शोभा बढ़ायें।

जय गुरुदेव जी की !

अध्यक्ष
प्रबन्ध समिति
श्री योग साधन आश्रम
रेलवे रोड, ऋषिकेश
जि. देहरादून (उत्तराखण्ड)

सम्पादकीय–

योग दर्शन में आत्म तत्व का निरूपण

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

सभी आस्तिक दर्शनों में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकारा गया है। उपनिषदों में भी आत्म तत्व का विवेचन विस्तार से हुआ है। श्रीमद्भगवत् गीता में अखिलात्मा भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने अपने मुखारविन्द से आत्मा तत्व को समझाया है वे कहते हैं–

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायम् भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्तोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। *(गीता 2/20)*

अर्थात् आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता है। यह आत्मा अव्यक्त है, अचिन्त्य है तथा विकार रहित है। यह सर्वगत अर्थात् सर्वव्यापी है तथा स्थिर (स्थाणु) है। इस प्रकार से गीता में आत्मा के अविनाशी स्वरूप को समझाया गया है। योग दर्शन में आत्म तत्व के लिये चितिशक्ति, प्रत्यक् चेतन पुरुष, द्रष्टा, दृक्शक्ति तथा स्वामी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

व्यास भाष्य में व्यासदेव जी ने आत्मा को चितिशक्ति कहा है जो अपरिणामी है, अप्रति संक्रम है, दर्षित विषय है, शुद्ध है तथा अनन्त है।

''चितिशक्तिर परिणामिन्यप्रति संक्रमा दर्शितविषया शुद्धा च अनन्ता च''

चितिशक्ति अपरिणामिनी है। चितिशक्ति में बुद्धि आदि की भाँति धर्म, लक्षण एवं अवस्था रूप परिवर्तन नहीं होता जबकि प्रकृति के समस्त पदार्थों में यह तीनों परिवर्तन होते

देखे जाते हैं। इसीलिये चिति शक्ति अपरिणामी है। यह अप्रतिसंक्रमा है। **''प्रति संक्रमः संचारः''**। इसमें कोई संचार नहीं होता अतः कोई परिवर्तन नहीं होता यह कूटस्थ है, निर्लेप है। इसका तीसरा लक्षण है दर्शित विषया है। सुख, दुःख मोह तथा शब्दादि विषय बुद्धि के भाव है किन्तु बुद्धि के अत्यन्त सामीप्य के कारण आत्मा में ये भाव प्रतिबिम्ब होते हैं। बुद्धि ने अपने भाव आत्मा को सौंप दिये, अर्पित कर दिये तथा आत्मा की चेतनता बुद्धि को मिल गई इसलिये आत्मा दर्शित विषया है बुद्धि बोधात्मा है। आगे दूसरे साधन पाद में कहा भी गया है एक सूत्र में–

'दृष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः'

यो. द. 2/20

द्रष्टा आत्मा दृशिमात्र तथा शुद्ध होने पर भी प्रत्ययानुपश्य है बुद्धि बोधात्मा है।

बुद्धि के ज्ञान से देखने वाला या प्रभावित होने वाला है। बुद्धि के भाव आत्मा में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं। दर्शित विषय होने के कारण ही व्युत्थान दशा में पुरुष वृत्तिसारूप्य वाला हो जाता है।

आत्मा वस्तुतः निर्विकारी है इसलिये शुद्ध कहा गया है यह अनन्त है अर्थात् विभु व व्यापक है। यह चितिशक्ति ही चित्त को चेतनता प्रदान करती है अन्यथा बुद्धि जड़ है। समाधि की शुद्ध अवस्था में आत्मा के ऊपर आवरण क्षय के पश्चात् व्यापकत्व सिद्ध हो जाता है।

योग दर्शन का लक्ष्य पुरुष–प्रकृति विवेक है इसे **''सत्व पुरुषान्यता ख्याति''** कहा गया है। यह ख्याति चित्त वृत्ति निरोध के द्वारा ही सम्भव है। योग दर्शन में चित्त का स्वरूप निम्न शब्दों में बताया है। **'चित्तं हि प्रख्या प्रवृत्ति स्थिति शीलत्वात् त्रिगुणम्'**

प्रख्या रूप चित्त सत्व प्रधान होता है। चित्त में सत्व की कमी होने पर रजोगुण प्रभावी हो जाता है रजोगुण से व्यक्ति नाना कर्मों में प्रवृत्त रहता है। वही चित्त तम से अनुविद्ध हो जाने पर अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य युक्त रहता है। निद्रा एवं अकर्मण्यता व्याप्त रहती है। पुनः मोह एवं आवरण के क्षय हो जाने पर सतोगुण रजोगुण के मिश्रण से धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य सम्पन्न रहता है। यह तीनों गुण अन्योऽन्याश्रित रहते हैं एक दूसरे के अनुगामी रहते हैं। प्रकृति के ये तीन गुण ही इस जीवात्मा को बन्धन में डालते हैं। 'निबधनन्ति महाबाहो देहे देहिन मण्ययम्।

दृष्टा आत्मा और दृश्य (प्रकृति) का संयोग ही दुःख का मूल कारण है।

''दृष्ट–दृश्ययोः संयोगो हेय हेतु'' *(यो. द. 2–17)*

पुरुष और प्रकृति का अनादि काल से चला आ रहा संयोग ही दुःख का मूल कारण है। इस संयोग को ही जड़ और चेतन की गाँठ माना गया है। इसे चिज्जडग्रन्थि भी कहते हैं। अज्ञान ग्रन्थि भी कहते हैं। अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है। यही 'हान' है यही चेतन–स्वरूप पुरुष का कैवल्य है। उस हान के उपाय के रूप में सूत्र दिया है **विवेकख्याति–रविप्लवा हानोपाय:''** अर्थात् विप्लव रहित **'मिथ्याज्ञानं तद्रहिता'** मिथ्या ज्ञान से सर्वथा रहित विवेक ख्याति ही हान का उपाय है। प्रकृति जीव को बन्धन में डालती है तो मुक्त भी वही करती है। भोग और अपवर्ग दोनों ही प्रदान करती है। पतञ्जलि देव जी का सूत्र है–

प्रकाश क्रियास्थिति शीलं भूतेन्द्रियात्मकं
भोगापवर्गार्थम् दृश्यम्।

यो. द. 2/18

अर्थात् सतोगुण, रजोगुण और तमोगुणात्मक प्रकृति भूत एवं इन्द्रियात्मक दृश्य जीव को भोग और मोक्ष दोनों ही प्रदान करती है।

इसलिये साधक को जब तक विवेक ख्याति अथवा ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त नहीं हो जाती है तब तक योग के आठों अंगों का दृढ़ता से अभ्यास करना चाहिये।

ऋतम्भरा प्रज्ञा श्रुत और अनुमान आदि प्रमाण से भिन्न है। प्रकृति के सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट (अत्यन्त दूर) अतीन्द्रिय **पदार्थों** को श्रुत, अनुमान से नहीं जाना जा सकता है।

ध्यान योग जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा से ही सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है।

(योग दर्शन 1/49)

ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार अन्य सभी व्युत्थान के संस्कारों को रोक देते हैं। पर–वैराग्य के द्वारा ऋतम्भरा जन्य संस्कारों का भी निरोध हो जाने पर निर्बीज समाधि की प्राप्ति हो जाती है। निर्बीज समाधि में कर्माशय का पूर्ण क्षय हो जाता है। परिणाम स्वरूप **'जात्यायुर्भोग:'** जाति (विभिन्न योनि) आयु और भोग (सुख–दुःखादि) देने वाले कर्मों के बीज पूर्णतया दग्ध **हो जाते हैं। यही निर्बीज समाधि** कहलाती है। **इसे** ही असंप्रज्ञात **समाधि** भी कहते हैं।

न तत्र किञ्चित् संप्रज्ञायते इति असंप्रज्ञात:।

इसलिये **'हेयं दुःखमनागतम्'** के सिद्धान्त के अनुसार आने वाले दुःख के निवारण का प्रयास करना चाहिये। प्रारब्ध के अनुसार पूर्व कर्मों के भोग का क्रम तो चल ही रहा है किन्तु अब से आगे के दुःखों का निवारण हो सकता है। कर्माशय के शुभाशुभ संस्कारों का भुगतान

'सतिमूले तद्विपाको जात्यायर्भोगः' *(योग दर्शन 2/13)* के अनुसार सभी को करना पड़ता है। संस्कारों के दग्ध बीज हो जाने पर पुनः अविद्या के संस्कार उदित नहीं हो सकते। अन्न के बीज के जला देने पर पुनः अंकुरित नहीं होता है इसी प्रकार से अविद्यादि क्लेशों के बीज जला दिये जाने योग्य है।

तभी द्रष्टा अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** तब द्रष्टा विशुद्धात्मा अपने शुद्ध स्वरूप कैवल्य में अवस्थित रहता है। योग दर्शन के चतुर्थ पाद के अन्तिम सूत्र में भगवान पतञ्जलि ने ग्रन्थ का उपसंहार करते हुये कृतकृत्यता का संकेत करते हुये चितिशक्ति के स्वरूप प्रतिष्ठा का वर्णन किया है और उसे कैवल्य कहा है–

'पुरुषार्थ शून्यानाम् गुणानाम् प्रतिप्रसवः
कैवल्यम् स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्ति रिति।'

(योग दर्शन 4/34)

योग और उपवर्ग रूप पुरुषार्थ को पूर्ण करने वाले गुणों का अपने कारण मूल प्रकृति में लय हो जाना कैवल्य कहा है। इसे ही योग दर्शन के तीसरे सूत्र में **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'** कहकर चितिशक्ति द्रष्टा के अपने स्वरूप में अवस्थान की बात कह दी है। **स्वरूप प्रतिष्ठा** ही कैवल्य मुक्ति है।

इसलिये योग साधक को अपने चैतन्य स्वरूप का सदा चिन्तन रहना चाहिये। गीता में श्री भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने भी कहा है–

तस्मात् सर्वेषु कालेषु योग युक्तो भवार्जुन।

(श्री मद्भगवद् गीता 8/27)

कोई अपमान तुम्हें गिरा नहीं सकता तुम अपना पतन अपने आप ही करते हो।

–अज्ञात

श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमती शान्ति शर्मा का क्षयरोग छूमंतर

--जगदीश राए बंसल ''अधम'' 9212434003

श्री सिद्धगुफा सँवाई धाम से सम्बन्ध रखने वाली झाँसी निवासी, गुरु भक्ति से ओतप्रोत 81 वर्षीय गुरु बहिन आदरणीया माता शान्ति देवी शर्मा ने दीपावली त्यौहार के शुभ अवसर पर अपने दिल्ली आश्रम में बतलाया कि मैंने सन् 1971 में गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज से दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वर्तमान में मैं दिल्ली आई हुई हूँ। मैं अपना अधिक समय दिल्ली एवं सँवाई आश्रमों में साधना करके व्यतीत करना पसन्द करती हूँ। गुरुजी की कृपा लीला के साथ–साथ झाँसी का नाम सुनते ही मुझे एक धुन याद हो आती है कि ''खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।'' झाँसी नगरी गुरुदेव भगवान की प्रिय लीला नगरी रही है। यहाँ पर हृदय सम्राट, कल्पतरु गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने दिनांक 7–10–1974 को अपने कर कमलों से महाप्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय की स्थापना की थी। इस महान विद्यालय में शिक्षित संगीतकारों द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में नाम कमाते रहने पर हमें गर्व प्राप्त होता रहा है। करुणा सागर जी के आशीर्वाद से यहाँ कई सराहनीय और परोपकारी कार्य एवं दैनिक संगीतमय गीता पाठ की गूँज दूर–दूर तक अनादि महा सिद्ध गुरुदेव भगवान की वाहि–वाहि बटोर रही हैं। सन् 1974 के स्थापना दिवस से सन् 1989 तक यहाँ वीरांगना लक्ष्मीबाई की कर्मभूमि के श्री लक्ष्मी व्यायामशाला मन्दिर के विशाल हाल में वार्षिक उत्सव पर योगाधिपति जी स्वयं पधार कर अपने अमृतकण बराबर बरसाते रहे हैं। यह परम्परा झाँसी मण्डल आज भी निभाए हुए है। यहाँ पर अपने गुरु भाइयों के लगभग एक सौ परिवार रहते हैं। गुरुदेव के विशेष कृपा पात्र श्री कृष्ण कान्त झा आयुवेग से अनभिज्ञ रहकर सब कार्यकर्ताओं के मध्य यथावत कार्यरत रहते हैं।

माताश्री ने अपना कृपा प्रसंग सुनाते हुए बतलाया कि दीक्षा से पहले मेरा कोई क्लिष्ट

संस्कार आ गया। परिणामतः सन् 1958 में मुझे क्षय रोग ने आ घेरा। परिवार वालों ने जगह–जगह अच्छे से अच्छे चिकित्सकों द्वारा उपचार करवाया मगर इसे मेरे भाग्य की विडम्बना ही कहिए कि मुझे कोई लाभ नहीं हुआ। उस समय यह रोग असाध्य रोग माना जाता था। अतः डॉक्टरों ने मुझे राम भरोसे छोड़ दिया। गहना कर्मणो गतिनुसार इस व्याधि में मेरे तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके थे कि संयोग कुछ ऐसा बना कि जब उन दिनों हम झाँसी में थे तो मेरे उनको (पति देव को) कहीं से एक योग शिविर का पर्चा हाथ लग गया। उस पर्चे में दैनिक कार्यक्रमानुसार एक योगी जी द्वारा प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक असाध्य रोगों के निदान करने की बात लिखी थी। मरता क्या न करता के अनुसार हम प्रातःकाल खाली पेट निर्धारित समय पर शिविर के चमचमाते पण्डाल में प्रवेश कर गए। खाली पेट इसलिए गए कि योगीराज नब्ज देखते होंगे या अन्य कोई जाँच पड़ताल करते होंगे। आयोजकों ने झाँसी नगरी को गुरुमय बना रखा था। अलौकिक गुरु दरबार, बजाए जा रहे सरस भजन, उपस्थित भक्तों की चहल–पहल, पार्षदों में हर्षोल्लास और उत्कृष्ट शिष्टाचार से प्रभावित हो कर हम आनन्द विभोर हो गए। परिणामतः हममें एक अपरिमित आकांक्षा का अंकुर फूट पड़ा। मगर शीघ्र ही पता चला कि आज के असाध्य रोगों के निवारण का कार्यक्रम रद्द हो गया है। और लोकोपकारी गुरु जी ऊपर अपने कक्ष में चले गये हैं। जब हम ऊपर गुरु कक्ष में जाने लगे तो साधक ने हमको रोक दिया। बोले, आज आप महाराज जी से नहीं मिल सकते। कल आना। क्योंकि गुरुजी को तीन बजे कहीं जाना है। लेकिन ऐसा भव्य मनमोहक स्थल देख कर हमें ऐसी खुमारी चढ़ी कि जब महाराज जी तीन बजे जाएंगे तो आते–जाते के दर्शन करके ही जाएंगे। अतः हम पण्डाल में ही बैठ गए। हमको वहाँ बैठे देखकर वह श्रीमान जी आक्रोश में बोला कि क्यों बैठे हो यहाँ? अपने घर जाओ.....। प्रत्युत्तर में हमने कहा कि हम बाहर बैठ जाते हैं, मगर जाएंगे तो दर्शन लाभ लेकर ही। कहते भी हैं कि भावना का संसार पृथ्वी से भी विशाल होता है। भगवान कहते हैं कि तुम मेरी तरफ एक कदम बढ़ो, मैं तुम्हारी तरफ दो कदम बढ़ूँगा।

हरे भरे खेत में सूखी डालियाँ नहीं होतीं।
योगी–सन्तों के जहन में खामियाँ नहीं होतीं।।

घट–घट पट–पट के ज्ञाता सिद्ध योगाधिपति जी अपने कक्ष से चलकर नीचे आ गए। श्री शर्मा जी को तो एक झलक दर्शन की मिल गई, मुझे मात्र धोती का एक कोर ही दर्शन को मिला। अब हमारे सब्र का बाँध टूट गया। मैंने कहा कि भाई जी, मन्दिरों में तो पण्डितों का ठेका है, यहाँ सन्त महात्माओं के दर्शन करने में आप जैसों ने ठेका ले रखा है। परन्तु अब तो हम सन्त जी महाराज के दर्शन करके ही जाएंगे। इस अवश्यम्भावी कथन को सुनकर वह भाई

जी भाव विहल हो गए और उसने मुझे बाहों में भर लिया। यह एक कारुणिक दृश्य था जो मेरे संस्कारों का ही वेग रहा होगा। अब हमको इनके शुभ नाम का भी पता चल गया कि ये हैं श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी उर्फ श्री बाबा जी।

यहाँ खड्डर बाबा जी की चर्चा करें तो इनके जीवन की अनेक गाथाएँ हैं। मगर चन्दू काका के चश्मे से देखें तो तात्विक बात यह है कि श्री खड्डर बाबा जी के दिनांक 16–12–1956 को प्रातःकालीन सैर की दृष्टि से चार बजे एक पर्वतीय मार्ग पर कदम बढ़ चले। चलते–चलते जैसे ही एक मनोहारी स्थान पर पहुँचे तो पुलकित होकर स्वतः ही हरि ओउम ..... हरि ओउम. ... हरि ओउम ..... की सरस वाणी मुख से बिखर पड़ी। आश्चर्य, महान आश्चर्य! तत्काल वहाँ पर दिव्य कर्मयोगी श्री बाँके बिहारी भगवान जी मुस्कराते हुए प्रकट हो गए। बाबा जी से बोले–अब चलो। बाबा जी महात्मा धनञ्जय की भांति पीछे–पीछे चल पड़े। मार्ग में आगे क्या देखते हैं कि दाँए–बाँए दोनों तरफ देवगण लाइन में खड़े हैं। सरस्वती माता जी दाँए और श्री कैलाशपति जी महाराज बाँए। ये सब देवगण इतनी ऊँचाई पर खड़े हैं कि कोई भूलोकी जन इन्हें छू ना सके। फिर त्रिलोकी नाथ श्री कृष्ण भगवान जी ने बाबा जी का परिचय समस्त देवों से कराया ..... इत्यादि। बाबा जी को और क्या चाहिए। अब बाबा जी इसी लयता के कारण नियमित उसी दर पर, उसी समय हरि ओउम–हरि ओउम जपते जाते रहे और भिन्न–भिन्न देवों के दर्शन एवं उनके सत्संग में पुलकित एवं आनन्दित होते रहे। श्री बाबा जी का यह क्रम बराबर तीन माह तक चलता रहा। ऐसे महान आत्मा थे हमारे श्री ईश्वरी प्रसाद खड्डर जी। (इस विलक्षण घटना की सत्यता गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी द्वारा प्रमाणित है)

माता श्री ने अपना प्रसंग जारी रखते हुए बतलाया कि–

मेरे भाग्य ने पलटा खाया।
दिन राम मिलन का आया।।

अब बाबाजी हमें आदर सहित अकारण दयालु, अनाथ–नाथ जी की शरण में ऊपर गुरु कक्ष में ले गए। गुरुदेव भगवान के दर्शन पा कर हम भाव विभोर हो गए। पुष्ट शरीर, ओजस्वी चेहरा, मन्द–मन्द मुस्कान, चमकते नैन ....। हम देखते ही रह गए। जी भर कर दर्शन किए, हम निहाल हो गए। हमारे जीवन का यह स्वर्णमय दिन रहा। श्री चरणों में प्रणाम करके मैंने अपनी पीड़ा की मनुहार की। महा सिद्धियों के स्वामी आशुतोष गुरुदेव भगवान ने मुझे पुष्प प्रसाद देकर कहा कि लल्ली इसे हर रोज खा लेना, प्रभु जी सब ठीक करेंगे। तत्पश्चात् हम गुरुदेव जी को प्रणाम करके नीचे लौट आए। हमें अतुलनीय आश्चर्य हो रहा था कि गुरुजी ने न तो नब्ज देखी, न खानदानी रोगों की चर्चा की, न कोई रोग का इतिहास पूछा और न

कोई परहेज–दवा–उपचार आदि बताया। हमारे पीछे–पीछे श्री खड्डर बाबा जी भी आ गए। हमारी खुसर–फुसर सुनकर, हमें सान्त्वना देते हुए बोले–योगियों की गहराई के मिठास का अनुवाद नहीं किया जा सकता। आप यह प्रसाद दैनिक खाओ, यह शिविर चार दिन और चलेगा, दैनिक यहाँ आओ, चारों दिन दिव्य आरती के छींटे अवश्य लो, यहीं भोजन प्रसाद ग्रहण करो, आपका क्षयरोग छूमंतर हो जाएगा। गुरुजी का यह ज्वलंत उद्घोष अक्षरत: सत्य होगा। हम आनन्द विभोर तो तब हो गए जब श्री खड्डर बाबा जी हमारे घर ही आ पधारे। बोले...... आप गुरुदेव जी से दीक्षा ले लो ...इत्यादि। अब हमें भी स्मरण हो आया कि हमारे पूर्व गुरु श्री गीता नन्द सरस्वती जी महाराज ने एक बार कहा था कि तुम्हारे गुरु कोई और हैं, और वे तुम पर ग्यारह नवम्बर से अपनी कृपा करेंगे। यह बात अक्षरत: सत्य सिद्ध हुई। हमने हर्षोल्लास के साथ दीक्षित होकर अपना जीवन सफल बनाया। मेरा क्षय रोग शनै: शनै: शीघ्रता से समाप्त हो गया। आज तक मैं पूर्णत: स्वस्थ हूँ।

देखे कितने वैद्य डॉक्टर, कितने सल्हीए सयाने।
जो देखा आँख फाड़ के, गुरु की बात गुरु ही जाने।।

धन्य हैं ऐसे सिद्ध शिरोमणी जगत नियन्ता गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जिन्होंने मेरे को जानलेवा क्लिष्ट संस्कार से यूँ चुटकी भर पुष्प प्रसाद देकर आजीवन रोग मुक्त कर दिया। ऐसे मंगल मूर्ति के श्री चरणों में बार–बार साष्टांग प्रणाम।

जय गुरुदेव !

आयु–नाश के छ: दोष

अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, स्वार्थ, और मित्र–द्रोह यह छ: तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। जो संसार में अधिक जीना चाहते हैं उन्हें इन छ: दोषों से बचना चाहिए।

–महात्मा विदुर

श्री गुरु-महिमा

श्री रामवश उपाध्याय, कछवा (मीरजापुर)

श्री गुरु की महिमा पुराणों और शास्त्रों में गाई गयी है। श्री सद्गुरु की प्राप्ति पुरातन पुण्यों एवं जन्म जन्मान्तर के सम्बन्धों से ही होती है। उसकी सेवा ईश्वर की ही सेवा है, ईश्वर मौन वृत्ति है पर गुरु ईश्वर की मुखर वृत्ति है। बिना गुरु कृपा के संसार सागर से पार होना नितान्त मुश्किल है क्योंकि श्री गुरु महाराज ज्ञान, विश्वास और भक्ति को देने वाले हैं। वैराग्य और योग की प्राप्ति भी श्री गुरु प्रसाद से ही सम्भव है, तभी तो 'सद् गुरु ज्ञान विराग योग' के कहा गया है। श्री गुरु की पीयूष मयी वाणी सांसारिक विष को नष्ट करने वाली है, तथा वे ही इष्ट देव के स्वरूप भी हैं। कहा भी गया है–

नमोस्तु गुरवे तस्माद् इष्ट देव स्वरूपिणे।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति विषं संसार संज्ञितम्।।

ईश्वर के रुष्ट हो जाने पर सद् गुरु के माध्यम से जीव की रक्षा हो सकती है पर गुरु के रुष्ट होने पर या उसका विरोध करने पर त्रैलोक्य में कोई त्राण देने वाला नहीं है जैसा कि रामचरितमानस एवं गुरु गीता में कहा है–

राखइ गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहि कोउ जग त्राता।
हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता
गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन
गुरु माराधयेद बुधः।।

सच तो यह है कि गुरु का दर्जा ईश्वर से भी बड़ा है–कबीरदास जी के सामने एकबार समस्या आ गयी उनके सामने उनके गुरु और ईश्वर दोनों प्रगट हो गये। अब वे प्रथम किसको सम्मान दें, पर उन्होंने जो निर्णय लिया वह बड़ा ही यथार्थ था। उन्होंने कहा कि मैं तो पहले गुरु को ही सम्मान दूँगा क्योंकि उन्होंने ही तो ईश्वर का साक्षात्कार कराया है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पांय।
बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय।।

गुरु की बताई हुयी सांकेतिक प्रविधि पर चल कर वे साधना के क्षेत्र को पार करते हुये

सिद्धावस्था में पहुँच गये और उस अवस्था में ईश्वर स्वयं उन्हें पुकारने लगा जिसका वर्णन स्वयं उन्होंने निम्न शब्दों में किया है।

मन ऐसा निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरैं, कहत कबीर कबीर।।

हम सांसारिक प्राणियों की स्थिति ठीक उस भ्रमर जैसी है जो कमल पुष्प के मकरन्द का पान करता हुआ अस्तगत अंशुमाली के साथ बन्द हुये कमल में स्वयं बन्द हो जाता है और काष्ठ छेदन की अपनी शक्ति से विस्मृत हो सोच रहा है कि–रात बीतेगी सुहावना प्रभात आयेगा, भगवान सूर्य उदित होंगे और यह कमल खिलेगा इस प्रकार की परिकल्पनाओं में व्यस्त वह मधुप उस पुष्प के अन्दर बैठा रह जाता है तभी अर्ध रात्रि के बाद काल रूप गज उस सरोवर में क्रीड़ा के निमित्त पहुँचता है और उस पद्म–पुष्प के साथ ही भ्रमर को भी विनिष्ट कर डालता है–जैसा निम्न श्लोक में कहा गया है–

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्।
भास्वानुदेश्यति हंसिष्यसि पंकज श्रीः।
इत्थं विचिन्त्यति कोश गते द्विरेफे।
हा हन्त, हन्त! निलनी गज उज्जहार।।

इसी सन्दर्भ में गोस्वामी श्री तुलसीदास ने भी कहा है–

मोह निशा सब सोविन हारा।
देखहिं सपन अनेक प्रकारा।।

पर साथ ही गोस्वामी जी की इस परिकल्पना से हम आशान्वित हो उठते हैं–

एहि जग यामिनि जागहि योगी।
परमरथी प्रपंच वियोगी।।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहि अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा।।

तो ये अकारण करुणा वरुणालय योगी भी यदा कदा अर्ध रात्रि के पश्चात् ब्रह्म मुहूर्त में स्नान हेतु सरोवर में पहुँचते हैं और स्नान के बाद अपने इष्ट स्वरूप परम प्रभु के चरणों में समर्पित करने के लिए उस अलियुत बन्द कमल पुष्प को लाते हैं।

प्रभु के पादारविन्दों में अर्पित अरविन्द भुवन भास्कर की कनक मयी किरणों के साथ जब विकसित होता है तो उसमें से निकला हुआ चंचरीक कोटि–कोटि कन्दर्प की शोभा को विलज्जित करने वाली नयनाभिराम परम लावण्यमयी महा प्रभु की मनोरमा सुषमा को देख आनन्द विभोर हो उठता है। साथ ही उसका कल्याण भी हो जाता है।

ज्ञान स्वरूप गुरु ही सदाशिव है और कल्याण स्वरूप सदाशिव ही सद्गुरु है जिनके सहारे वक्र शशांक भी बन्दनीय हो जाता है।

वंदे बोध मयं नित्यं गुरु शंकर रूपपिणम्।
यमाश्रितोहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्दते।।

श्री गुरु में मानव बुद्धि रखना अपनी ही अज्ञानता है। शास्त्रों ने स्पष्ट किया है कि गुरु सत्ता ही ईश्वर सत्ता है अतः उसमें ईश्वरत्व दर्शन होता है। श्री अग्रदास जी ने भी इसे अपने शब्दों में उसे इस तरह व्यक्त किया है–

गुरून विषे नर बुद्धि शिला
सम गनै विष्णुतन।
चरणामृत जल जान
मंत्र वदै बानी सम।।
महा प्रसाद हि अन्न
साधु की जाति पिछाने।
ते नर नरकै जांय
वेद स्मृती बखाने।।
अग्र कहे यह पाप घट
अति मोटो दुर्घट विकट।
और पाप सब छुटै पैहूल
मिटै हरि नाम रट।।

गुरु हमें अज्ञान तम से निकाल ज्ञान के प्रकाश के शास्वत राज्य में पहुँचा देता है। उसकी वाणी भी मोहान्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य की किरणों के समान है। गुरु शब्दार्थ भी तो यही है–

''गु शब्द स्त्वन्धकारः–
स्याद्रू शब्द स्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद्–
गुरु रित्यभिधीयते।।
बन्दौ गुरु पद कंज,
कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज
जासु वचन रविशंकर निकर।।

सर्व देवों के रूप में गुरु का दर्शन होना साधना की उच्चावस्था है कहा भी गया है–

आचार्य मां विजानी–यान्नावमन्येतृकर्हिचित्।
न मर्त्य बुद्धया ऽसूयेत–सर्वदेव मयो गुरुः।।

श्री रामचरितमानस में सर्वत्र गुरु की महिमा का वर्णन है एकाध, प्रसंग नीचे उद्धृत किया जाता है।

एक बार भगवती महिमामयी जगदम्बा माता ने भगवान शिव से संसार के प्राणियों की हित कामना को लेकर प्रश्न किया कि महाराज! यदि ईश्वर सर्वत्र है तो लोग उसे देख नहीं पाते? भगवान कह सकते थे कि ईश्वर चर्म चक्षुओं से कहीं दिखाई नहीं पड़ता या ईश्वर को देखने के लिए लोगों के पास वृष्टि ही नहीं है, पर उन्होंने इन बातों को कहते हुए एक अद्‌भुत वाक्य जोड़ दिया, उन्होंने कहा–

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना।
राम रूप देखहिं किमि दीना।।

अभी तक ऐसा समझा जाता है कि अपने को देखना सरल है और दूसरों को देखना कठिन होता है लेकिन बात उल्टी हुई, दूसरों के देखने के लिए केवल दृष्टि की आवश्यकता भर है, अपने को देखने के लिए दृष्टि और दर्पण दोनों की ही आवश्यकता है। दृष्टि के अभाव में व्यक्ति अपने को नहीं देख सकता और दृष्टि रहते हुए भी अपने को देखने हेतु दर्पण आवश्यक है, अगर दृष्टि भी हो, दर्पण भी हो तो भी दर्पण के गन्दा होने पर व्यक्ति स्वयं को नहीं देख पाता। दृष्टि वाला अपने स्वरूप को देखने के लिए नितान्त मलिन दर्पण को धूल के कणों से, जल से व कपड़े से जब साफ करता है तो उसका शारीरिक स्वरूप उसमें परिलक्षित होने लगता है। श्री रामचरितमानस में कवि कुल चूड़ामणि गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने इस मन को ही दर्पण बताया है, पर मन सांसारिक वासनाओं से इतना धुँधला हो गया है कि उसमें स्वरूप दर्शन करना अत्यन्त दुर्लभ है, तब उन्होंने इस मन मुकुर की स्वच्छता के लिए जिन रज कणों का वर्णन किया जो वास्तव में अत्यन्त वास्तविक है। यह रज–कण हम सभी के मन को हमेशा स्वच्छ करते रहें यही प्रभु से याचना है, उन्होंने कहा है–

श्री गुरुचरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।।

भूल करना मानव स्वभाव है और क्षमा करना मानव धर्म। अतः यदि मानव स्वभाववश इस बच्चे से कोई त्रुटि हो गई हो तो सहज भूल समझ कर आप सभी मुझे क्षमा करेंगे ऐसा विश्वास है।

योग का तात्पर्य और चरित्र-निर्माण

महन्त श्री अवैद्यनाथ जी महाराज

योग के सामान्य धरातल पर उसकी साधना के षडंग, अष्टांग, पञ्चदशांग आदि भेद निर्दिष्ट हैं। पर ये सभी स्तर मानव–जीवन और मानव के चरित्र–निर्माण के लिये अचल आधार हैं। इनमें यम–नियम के संयमपूर्वक सेवन से चरित्र उदात्त, पवित्र और प्रसादयुक्त होकर श्रेय की प्राप्ति में महनीय भूमिका की स्थापना करता है। योगरूप प्रधान विद्युत्शक्ति केन्द्र, अलखनिरंजन परमात्मा के सत्–स्वरूप से, निरंजन से जीवन की कल्याणमयी मंगलज्योति प्रवाहित होती रहती है और योगसाधनाएँ तथा यम–नियमादि योग के विभिन्न अंग–उपांग सभी उस केन्द्रीय शक्ति–गृह से युक्त होकर मानव को कल्मषरहित पुण्य जीवनयापन तथा आत्मदर्शन और परमात्मा–साक्षात्कार की प्रेरणा देते रहते हैं। चरित्र–निर्माण की दिशा में यही योग का परम तात्पर्य अथवा श्रेयस्कर कार्य है। महायोगी गोरखनाथ जी ने एक सबदीमें चरित्र–निर्माण का सम्पूर्ण रहस्य योग साधक के लिए भर दिया है। उनका यह अमृतवचन सम्पूर्ण मानवता के लिये पवित्र चरित्र की प्रेरणा देता है। यह गोरखवानी 7वीं सदी की है जो इस प्रकार है–

योग को सदैव आत्मसंयम करना चाहिये। योग का आधार ही नहीं, स्वरूप भी चित्तवृत्ति का निरोध है। संसार में जन्म लेने वाले प्राणी के लिये यह उचित है कि वह आनन्दपूर्वक समस्त दु:खों का भोग करता हुआ भी उनमें अनासक्त रहे। इससे उसकी आत्मस्वरूप में स्थिति निरन्तार बनी रहती है। उसे काम और क्रोध से दूर रहना चाहिये; क्योंकि काम और क्रोध से ही प्राणी अविद्या–अन्धकार और ममत्व क बन्धन से आसक्त होने पर आत्म विस्मरण का शिकार हो जाता है। जीवन को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह जीवन की सत्यता से, कर्तव्य–पालन से, विमुख न हो, अनासक्त भाव से जीवन के समस्त ऐश्वर्य–वैभव का भोग करता हुआ भी आत्म–संयम में रहे और मन पर नियन्त्रण रखे। यही गीता की भाषा में–'योग: कर्मसु कौशलम्' कार्य बन्धन से बच निकलने का मार्ग और युक्ताहार विहारमय निर्द्वन्द्व संतुलित स्थितिरूप 'समत्वयोग' है। यह समत्वयोग ही चरित्र–निर्माण का केन्द्रीय प्रकाशगृह है। इससे संग अथवा आसक्ति का अपने–आप त्याग हो जाता है और जीवन में निर्मलता का अमृत प्रवाहित होता है। यही योगस्थ कार्यसम्पादन है, जिससे चरित्र निर्माण में सहायता सुलभ होती है। भगवान् कृष्ण का कथन है–

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।

(गीता 2/48, 50)

मनुष्य–जीवन की सार्थकता यही है कि उसका उचित सदुपयोग हो, वह व्यर्थ और निष्फल न चला जाये। जन्म से लेकर मरण–पर्यन्त समस्त संस्कारों को शास्त्रसम्मत ढंग से अपने जीवन में प्रस्तुत करते हुए अनासक्त होकर जीवात्मा परमात्मा के ध्यान और स्वरूप–चिन्तन में तत्पर रहे। नाथ–पंथ के सिद्धामृत–मार्ग में योगसाधनागत पवित्र चरित्र–निर्माण का यही अमृत फल है कि मनुष्य परमात्मद–परमस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाये। हमारे मत में पवित्र चरित्र के द्वारा नाथ–स्वरूव अथवा शिवस्वरूप की प्राप्ति ही लक्ष्य है।

नाथयोग में चरित्र–निर्माण की दिशा में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, धृति, क्षमा, आर्जव, मिताहार और शौचस्वरूप दस यमों का निर्देश है तथा इन यमों के संयमन की दिशा में साधक अथवा मनुष्य मात्र के लिये तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त–वाक्य श्रवण, ह्री मति, जप और हवन दस नियम आवश्यक हैं। नाथ योग के अप्रतिम साधनाग्रन्थ हठयोग–प्रदीपिका में यम–नियम की चरित्र–निर्माण के लिये स्थापना की गयी है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मताहारः शौचं चैव यमा दश।।
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानमीश्वरपूजनम्।
सिद्धान्तवाक्यश्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्।
नियमा दश सम्प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः।।

(हठयोग प्रदीपिका 1/17–18)

ये दस यम–नियम योग के शेष छः उपांगों के पोषक हैं। आसन सिद्ध योगी अथवा साधक अथवा मनुष्य शीत–उष्ण, क्षुत्पिपासा और आलस्य–तन्द्रा आदि द्वन्द्वों पर विजय पा लेता है। श्वास–प्रश्वास की गतियों का विच्छेद ही प्राणायाम है। इसके द्वारा मन को स्थिर करने की शक्ति प्राप्त होती है और शरीर में चैतन्य का प्रवाह अनवरत होता रहता है। सतर्कतापूर्वक मन और इन्द्रियों को बाह्य–विषयों के संस्पर्श से दूर रखकर आन्तर भाव में उन्हें प्रयुक्त करना ही प्रत्याहार है। धारणा, ध्यान और समाधि को अनेकविध बाह्य–आन्तर विषयों में प्रयुक्त करके विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ और उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। किसी

निश्चित वस्तु पर ध्यान को केन्द्रित करने की प्रक्रिया को 'धारणा' करते हैं। जब चित्त सभी प्रकार की उच्छृंखल प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है, तब धारणा ध्यान की स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। ध्यान की प्रगाढ़ स्थिति ही समाधि है। निःसन्देह योग के इस साधना–मार्ग से चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया की सम्पूर्ण सिद्धि होती है।

हमारे पुण्यश्लोक भारत–देश के मनीषियों, महर्षियों और सिद्धों तथा महायोगियों ने सारे विश्व के मानवों को वेदविहित वर्णाश्रमसम्मत आचार–विचार को जीवन में उतार कर सार्वभौम श्रेय की प्राप्ति की सत्प्रेरणा प्रदान की है। गोरक्षमहायोगी गोरखनाथ ने अपने अनुभव सिद्ध 'सिद्धसिद्धान्तपद्धति' नामक योगशास्त्र में कहा है–**सदाचारतत्त्वे ब्राह्मणास्तिष्ठान्ति, शौर्ये क्षत्रिय, व्यवसाये वैश्या:, सेवा भावे शूद्राश्च।** *(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 3/6)*

इसका आशय यह है कि सदाचार, शौर्य, व्यवसाय और सेवाभाव ही समग्र मानव के लिये स्वधर्म है जिनके द्वारा जीवन की उन्नति होती है, चरित्र का निर्माण और विकास होता है। ब्राह्मण से शूद्र अनुक्रम में किसी धर्म की हीनता या विशेष प्रतिष्ठा का द्योतक नहीं है, यह एक मानवीय क्रम है, जिसमें जो मनुष्य सदाचारी है, जो शौर्य में लगता है, जो व्यवसाय कर राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाता है और अपनी सेवा के द्वारा सामाजिक श्रेय का प्रतिपादन करता है, वही चरित्रवान् है। वही संस्कृत और शिष्ट है। मनुष्य मात्र में वर्गीय अथवा जातीय भेदभाव की स्थापना तो निरर्थक है, सार्थकता यह है, कि सभी मनुष्य एक–दूसरे के आत्म सम्बन्धी हैं और सभी के हृदय में परमात्मा और उसकी ज्योति प्रकाशित है। वास्तव में यही कर्मयोग है, जिसमें सत्य की पूर्ण प्रतिष्ठा है। कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और इनमें सत्य–प्राप्ति की प्रतिष्ठा है। महायोगी गोरखनाथ जी ने कहा है–

सत्यमेकमतं नित्यमनन्तं चाक्षमं ध्रुवम्।
ज्ञात्वा यस्तु वदेद्धीरः सत्यवादी स कथ्यते।।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति 6/60)

जीवन के चरित्र में सत्य ही अमृत है। इस सत्य से ही चरित्र–निर्माण का तात्पर्य सम्पादित होता है।

यदिदं किं च तत्सत्यमित्याचक्षते।

(तैत्तिरीयोपनिषद् 2/6/1)

सत्य सर्वाश्रय है, परमात्मा अक्षय और सनातन है; यही चरित्र–निर्माण का सर्वोपरि शक्ति केन्द्र है, जिससे जीवात्मा अमृतत्व में प्रतिष्ठित होता है। सत्यप्राप्ति ही चरित्र की गरिमा है।

यौगिक प्रश्नोत्तरी

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

आश्रम का शुद्ध वातावरण था। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में इधर–उधर से सत्संगी लोग आकर अपने अभ्यास में लगे हुये थे। योग शिक्षक साधक समुदाय अपनी–अपनी कक्षाओं में योग शिक्षा दे रहे थे। ध्यानाभ्यासी लोग अपने मन को ध्यानाभ्यास में लगाकर लीनता प्राप्त कर रहे थे। इस प्रकार के वातावरण में थोड़ी ही देर बाद श्री आनन्दकन्द प्रभु जी की आरती का समय आया। सभी साधक समुदाय गद्–गद् कण्ठ होकर आरती का उच्चारण करने लगा। आकाश तल पर ध्वनि निनादित हो उठी–

'चरणारविन्दम् गोविन्द नमामि
गुरुदेव शरणम् गुरुदेव नमामि''

ज्यों ही श्री प्रभुजी की आरती जय ध्वनि के साथ सम्पन्न हुई। साधक समुदाय सभी यथा स्थान अपने आसन पर बैठ गये। कुछ जिज्ञासु साधकों के मन में तीव्रतम् जिज्ञासा उठी हुयी थी। वे लोग अपनी शंका निवृत्ति के लिये कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे।

''आकारी रैंगतेगत्यां चेष्टया भाषणेन च
नेत्र वक्त्र विकारैश्च जायते अन्त गतं मनः।''

उक्त सिद्धान्तानुसार श्री योगाचार्य जी ने साधकों के मनोभावों को समझ लिया और वे बड़ी गम्भीर मुद्रा से कहने लगे–''भाई तुम्हारे मनों के अन्दर कुछ जिज्ञासा दिखलाई दे रही है यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो। तुम्हारे मनोमिलिषित भावों को शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार समझाने का प्रयत्न करेंगे।'' श्री योगाचार्य जी के ऐसा आदेश देने के बाद तुरन्त एक जिज्ञासु साधक ने **प्रश्न** किया–

'हे प्रभो आप कृपा करके यह बतला दीजिये कि योग किसको कहते हैं? ताकि आप के उत्तर को समझकर हम सही रूप से योगानुगामी बन जायें।

उत्तर–''हे पुत्र सुनो चित्त वृत्ति निरोध को योग कहते हैं। शास्त्रीय परिभाषानुसार 'चित्तवृत्तिनां नितरांरोधेद् योगः' अर्थात् चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन ही योग कहलाता है।''

प्रश्न–''हे गुरुदेव! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन हो जायेगा तब साधक की क्या स्थिति होगी? और चित्त वृत्तियों का आत्मा से क्या सम्बन्ध है? यह बात भी खोल कर स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिये–

उत्तर–''हे पुत्र सुनो! आत्मा एक शुद्ध निर्मल ज्योति है जिसमें कभी कोई विकार नहीं। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि–

'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम–क्लेद्यो शोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुर–चलोऽयं सनातनः'

अर्थात् आत्मा बिल्कुल अच्छेध्य, अभेध्य अचल तथा अविकारी है। केवल मात्र बौद्धिक ज्ञान द्वारा ही यह सुखी दुखी दिखलाई देता है वस्तुतः स्वयं तो यह बिल्कुल अविकारी है।

प्रश्न–''हे गुरुदेव! कृपा करके यह बात समझाइये कि बुद्धि और आत्मा का क्या सम्बन्ध है?

उत्तर–हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो–आत्मा एक विकार रहित निर्मल ज्योति है और बुद्धि जड़ है। आत्मा का तेज जड़ बुद्धि पर पड़ा तो वह चेतन हो उठी। चेतन हो उठने पर जड़ बुद्धि ने अपना प्रभाव आत्मा पर डाला अर्थात् बुद्धि ने अपना स्वरूप आत्मा को दिखलाया, उसका प्रभाव पड़ जाने से आत्मा अपने आप को सुखी और दुखी अनुभव करने लगा। इसी लिये आजकल की परिभाषा में आत्मा को बुद्धिबोधात्मा कहा जाता है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! बुद्धिबोधात्मा का क्या अर्थ है? इसका तो स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि आत्मा पर बुद्धि का प्रभाव पड़ गया, तब तो सीधे शब्दों में आत्मा विकारी बन गया?

उत्तर–हे पुत्र! ऐसी बात नहीं है विकारी तो नहीं बना किन्तु विकारी जैसा भासित होने लगा। इस बात को तुम इस प्रकार से समझो जैसे बिजली की रोशनी हरे बल्ब के अन्दर हरी, पीले के अन्दर पीली, लाल के अन्दर लाल तथा काले के अन्दर काली दिखलाई देती है। इसी प्रकार आत्मा का निर्मल प्रकाश भी त्रिगुणात्मिका जड़ बुद्धि के अन्दर भी जैसा उसका स्वरूप है वैसा ही भासित होने लग गया। इसी कारण से संसार में जन्म लेने वाले व्यक्तियों को सुख दुःख की अनुभूति होती रहती है। यही जन्म और मरण का कारण है इसी कारण भगवान पतञ्जलि देव ने 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' कह करके चित्त वृत्तियों के नितरां निरोध को योग बतलाया है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! जब चित्त वृत्तियों का समूलोन्मूलन निरोध हो जायेगा तब चित्त वृत्तियाँ तो रहेंगी ही नहीं? तब आत्मा की क्या स्थिति होगी, आत्मा कैसे स्वरूप में रहेगा? अब तो आत्मा बुद्धि बोधात्मा है इसलिये सुख दुःख का अनुभव करता रहता है। जब चित्त–वृत्तियाँ बिल्कुल होंगी ही नहीं उस हालत में आत्मा सुख दुःख का उपभोक्ता रहेगा नहीं तो इसका क्या स्वरूप कहलायेगा? कृपा करके यह बात स्पष्टीकरण के साथ आप मुझे समझा दीजिये।

उत्तर–हे पुत्र! तुम्हारा यह प्रश्न बिल्कुल ठीक एवं शास्त्र सम्मत है और इस का उत्तर स्वयं भगवान पतञ्जलि देव जी ने ही योग दर्शन के तीसरे सूत्र में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में दे दिया है वह इस प्रकार से है–

'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'

अर्थात् तब द्रष्टा जीवात्मा अपने शुद्धस्वरूप के अन्दर प्रतिष्ठित हो जाया करता है।

प्रश्न–हे गुरुदेव! स्वरूप प्रतिष्ठा कैसी होती है? कृपा करके यह बात और मुझे समझा दीजिये। क्या स्वरूप प्रतिष्ठा हो जाने के बाद आत्मा को सुख दुःख आदि का कोई अनुभव नही होता?

उत्तर–हाँ पुत्र! स्वरूप स्थिति का नाम निरोध समाधि है। उसी को योग कहा गया है। उपनिषद् कार इसके विषय में खोलकर स्पष्ट लिखते हैं कि–

''समाधि समतावस्था जीवात्म परमात्मनः समाधिर्वै योगः''

अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था को ही योग कहा गया है और वही निरोध समाधि कहलाती है। निरोध समाधि में पहुँच जाने पर आत्मा बिल्कुल शुद्ध स्थिति में पहुँच जाने पर आत्मा बिल्कुल शुद्ध स्थिति में आ जाया करता है, वहाँ तक मन और बुद्धि की कोई पहुँच नहीं रहती निरोध समाधि की स्थिति को अनुभवी सन्तों ने इस प्रकार कहा है–

'मन बुद्धि से परे कोई, बिरला जाने सन्त'

और इसके साथ–साथ 'तदा दृष्टः स्वरूपे अवस्थान' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यास देव महाराज ने भी अपने शब्दों में पूर्ण रूपेण व्यक्त कर दिया है–

'स्वरूप प्रतिष्ठा तदानी
चित्त शक्तिर्यथा कैवल्य,
व्युत्थान चित्ते तु सति
तथापि भवन्ति न तथा।'

अर्थात् स्वरूप प्रतिष्ठा का अर्थ है जैसी चेतन शक्ति मोक्ष में हुआ करती है। यद्यपि आत्मा संसार में जन्म और मरण के दुखों का अनुभव करता हुआ भी स्वरूप प्रतिष्ठा के रूप में तो बिल्कुल विकार रहित शुद्ध बुद्ध मुक्त है ही किन्तु ऐसा होने पर भी क्योंकि यहाँ पर यह बुद्धि बोधात्मा है इसलिये स्वरूपात्मा नहीं है। स्वरूप प्रतिष्ठा तो यह तभी कहलायेगी जब इसका बौद्धेय बोध बिल्कुल समाप्त हो जायेगा और आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूप में रह जायेगा।

प्रश्न–हे गुरुदेव! इसका तो अर्थ यह हुआ कि निर्बीज अर्थात् निरोध समाधि ही समाधि है। इसके अतिरिक्त मैं अपने गुरु भाई और बहिनों के समुदाय में यह देखता हूँ कि लोग विभिन्न प्रकार की अपनी ध्यान स्थिति को सुनाते और बतलाते हैं। ऐसी हालत में देखने और सुनने का जो विषय है वह तो बुद्धि का ही ज्ञान हुआ। अतः अच्छे–अच्छे ध्यानी साधक को भी जो ध्यानानुभूतियाँ होती रहती हैं वे सबका योग नहीं है?

उत्तर–हे पुत्र! तुम बात तो ठीक कहते हो। तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है किन्तु ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'' इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान व्यास देव जी ने एक संकेत दिया है जो निम्न प्रकार है–

सर्व शब्दा ग्रहणात् सं प्रज्ञातोऽपि योग इत्याऽऽख्यायते, चित्तं हि प्रख्याप्रवृति–

स्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम् प्रख्यारूपं हि चित्त सत्त्वं रजस्तमोभ्यां सं सृष्ट मैश्वर्य्य विषय प्रियं भरुति,

तदेव तमसाऽनुबिद्धमाधर्मा ज्ञानावैराग्या नैश्वर्य्योपगं भवति, तदेव प्रक्षीण मोहाव रणं सर्वत: प्रद्योतमानम्नु विद्धम् रजो मात्रया धर्मज्ञान वैराग्येश्वर्योपगं भवति, तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूप प्रतिष्ठं सत्व पुरुषान्यता ख्याति मात्र धर्ममेघध्यानोपगं भवति, तत्परं प्रसंख्याना मित्या चक्षते ध्यायिन: चित्तशक्तिर्परिणामिन्य प्रतिसंक्रमा दर्शित विषया शुद्धा चानन्ता च सत्त्व गुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेक ख्यातिरिति: अतस्तस्यॉं विरक्त चित्तं तामपि ख्याति निरुणद्धि तदवस्थं चित्तं संस्कारो पगं भवति स निर्बीज: समाधि: न तत्र किंचित सम्प्रज्ञायत इत्यसम्प्रज्ञात: द्विविध: स योगश्चित्त वृत्ति निरोध इति।

अर्थात् क्योंकि 'योगश्चित्त वृत्ति निरोध:' इस सूत्र मे 'योग:' सर्व चित्त वृत्ति निरोध:' ऐसा नहीं कहा गया है इसलिये सम्प्रज्ञात को भी योग ही कहा गया है क्योंकि प्रख्या प्रवृत्ति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। एक नियम की बात चलती है और वह यह कि हमारे चित्त में जिस समय जो गुण प्रधान होता है उसके साथ दो अन्य गुण उसके अधीन काम करने वाले उसके सहचारी रहते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण एवं तमोगुण उसके सहचारी रहते हैं तब वह चित्त ऐश्वर्य को चाहने वाला होता है और उसके बाद उस ही चित्त में जब तमोगुण की प्रधानता आ जाती है तब वह चित्त अधर्म अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य की ओर झुका रहता है और जब वह चित्त प्रवीण मोहावरण हो जाता है केवल मात्र बहुत थोड़ा सा रजोमात्रा से अनविद्ध रहता है तब वह चित्त धर्म, ज्ञान तथा वैराग्य को चाहने वाला होता है और वही चित्त जब रजोगुण की मात्रा से बिल्कुल छूट जाया करता है तो स्वरूप प्रतिष्ठित धर्ममेघ समाधि वाला कहलाया करता है, ध्यानी लोग इसे परम ज्ञान कहते हैं। वैसे नियमानुसार चित्त शक्ति अर्थात् जीवात्मा बिल्कुल अपरिणामनीय है। इसके ऊपर किसी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता शुद्ध और अनन्त है किन्तु बुद्धि का प्रभाव पड़ जाने से दर्शित विषया कहलाती है और जो यह विवेक ख्याति है वह भी सतोत्वगुणात्मिका होने के कारण हेया है। इसलिये उसमें भी विरक्त हुआ साधक गुणात्मिका होने के नाते से उसको भी छोड़ देता है। जब चित्त उस ख्याति को भी छोड़ देता है तब उस चित्त में मैं हूँ इस प्रकार की वृत्ति शेष रह जाती है। यह वृत्ति भी समाप्त हो जाने पर साधक निर्बीज समाधि तक पहुँच जाता है। इस समाधि को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं इस लिए सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो प्रकार के योग का वर्णन किया है और जहाँ से भगवान पतञ्जलि ने अथ योगानुशासनम् कहकर योग दर्शन का आरम्भ किया है, इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये भगवान व्यास देव ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं इसमें चित्त किन–किन अवस्थाओं में रहता है यह समझाया है जो वह इस प्रकार है–

''योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यं

योग:–समाधि: सच सार्व भौमश्चित्तस्य धर्म: क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तं, एकाग्रम्, निरुद्धम्,

इति चित्त भूमयः तत्र विक्षिप्ते चेतसि सदभूतमर्थं प्रद्योत यति, क्षिणोति च क्लेशानकर्म बन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखम करोति स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते सच वितर्कानुगतो, विचारानुगत आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्यु परिष्टात्प्रवेदिष्याम: सर्व वृत्ति निरोधे त्वसम्प्रज्ञात: समाधि:।

अर्थात् योगानुशासन शब्द का अर्थ शास्त्र में प्रवेश करने के अधिकार को कहा गया है। 'योग समाधि' कह करके योग शब्द की अभिव्यक्ति की है वह समाधि सार्वभौम चि त्त का धर्म है, क्षिप्त मूढ़ विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध ये चित्त की भूमिकायें कहलाती हैं और वहाँ पर विक्षिप्त चित्त में, क्योंकि विक्षेप प्रधान है और समाधि गौण है, इसलिये विक्षेपोपसर्जनी समाधि को योग पक्ष में नहीं माना गया है और जो समाधि चित्त की एकाग्रावस्था को प्राप्त होती है जिसमें पहुँचकर साधक वस्तु तत्त्व की यथार्थता को जान लेता है और क्लेश बन्धन क्षय हो जाते हैं– कर्म कलाप कमजोर पड़ जाता है और चित्त को निरोध की ओर ले जाती है, वह समाधि सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणी होती हैं।

१. विचारनुगम २. वितर्कानुगम ३. आनन्दानुगम और ४. अस्मितानुगम। ये चारों श्रेणी सम्प्रज्ञात समाधि की हैं इनमें चित्त वृत्तियाँ काम करती रहती हैं और निर्बीज में जाकर चित्त का समूलोन्मूलन हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपने सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ बतलाई है ये तो मैं बाद में समझ लूँगा किन्तु पहले मुझे सार्वभौम चित्त किन–किन भूमिकाओं में किस–किस प्रकार रहता है, यह बात पूरी तरह स्पष्टीकरण के साथ समझा दीजिये–ताकि मैं भली प्रकार समझ जाऊँ कि चित्त अपनी–अपनी भूमिकाओं में किस प्रकार रहा करता है और बाद में निरोध तथा निर्बीज स्थिति में चित्त की क्या स्थिति होती है?

उत्तर–हे पुत्र! इस बात को तुम इस प्रकार से समझ लो। पहले भी तुम्हें समझाया था कि प्राख्या प्रवृत्ति और स्थिति शील होने से चित्त त्रिगुणात्मक है। देखो जहाँ पर जिस गुण की प्रधानता हो जाती है वहाँ दो अन्य गुण उस प्रमुख चित्त का अनुगमन करते हैं। जैसे भगवान व्यास देव ने सारे संसार के प्राणियों को उपरोक्त पाँच भूमिकाओं में बांट दिया है। उनमें से मूढ़ावस्था के प्राणी वे कहलाते हैं जिनमें तमोगुण की प्रधानता होती है और रजोगुण व सतोगुण गौण रूप से रहा करते हैं। ऐसे प्राणी अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य को चाहने वाले गधे, घोड़े तथा खच्चर आदि प्राणियों की तरह मूढ़पन के प्राणी कहलाते हैं। उसके बाद दूसरे प्राणी वे हैं जिनमें रजोगुण प्रधान हो जाता है और तमो तथा रजोगुण गौण रूप से कार्य करते हैं। ऐसे प्राणी परलोक वृत्ति को नहीं समझते। राम, कृष्ण, विष्णु, शिवादि को नहीं मानते उन लोगों का सिद्धान्त होता है–

यावद्जीवेत् सुखं जिवेत् ऋण कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनर्रागमन कुत:

अर्थात् मनुष्य संसार में जिन्दा रहे तब तक ऐश और आराम से रहे। कर्जा लेकर घी को पिये क्योंकि अन्त में शरीर जल कर भस्म हो जायेगा उसका पुनर्आगमन होगा ही नहीं। ऐसे प्राणी रजोगुण प्रधानक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं, तीसरे प्राणी वे हैं जो विक्षिप्तावस्था के प्राणी कहलाते हैं इन लोगों में सतोगुण प्रधान तथा रजोगुण व तमोगुण गौण हो जाते हैं। ये परलौकिक विचारधारा मानते हैं श्रीराम, कृष्ण, विष्णु तथा शिवादि के अन्दर पूरी-पूरी श्रद्धा रखते हैं किन्तु रास्ता न मिलने के कारण विवश रहते हैं ये ही लोग अपने मुख से बार-बार संकीर्तन किया करते हैं कि-

राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान,
कबहुं तो दीन दयाल के, भनक पड़ेगी कान।

इन लोगों में यह विश्वास अवश्य होता है कि ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। भगवान राम, कृष्ण, विष्णु शिवादि के दर्शन हो सकते हैं किन्तु कोई उपाय न मिलने पर असमर्थ रहते हैं। इससे आगे चौथे प्राणी-एकाग्र अवस्था के कहलाया करते हैं। इनमें सतोगुण चमक उठता है। मोहावरण क्षीण हो जाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अन्तर्मुखता धारण कर लेती हैं और उस सतोगुण के दिव्य प्रकाश के अन्दर श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान सदाशिव तथा अन्य देवी-देवताओं के दर्शन भी होने लगते हैं धीरे-धीरे ये साधक ऋतम्भरा प्रज्ञा तक पहुँच जाते हैं और इनकी अनुभूतियाँ सत्य होने लग जाती हैं। इससे आगे पाँचवीं अवस्था निरोधावस्था है जिसमें जाकर के चित्त केवल अस्मि प्रत्यय रूप से ही शेष रहता है वह भी निर्बीज समाधि में जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाता है इस निर्बीज समाधि में ही स्वरूप में आत्मा प्रतिष्ठित हो जाता है, इस स्थिति में चित्तवृत्ति निरोध को प्राप्त करके **''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः''** इस सूत्र का यथार्थ ज्ञाता बन जाता है। इस ही निर्बीज समाधि को प्राप्त करके योगी अपने आपको समतावस्था में देखता है और प्राप्तव्य को पाकर कृत्य कृत्य हो जाता है।

हे गुरुदेव! आपके उपदेशामृत को सुनकर मैंने योग शब्द के अर्थ को भली प्रकार समझ लिया है। आशा है आपकी पूर्ण कृपा से मैं अवश्य ही योगानुगामी बन जाऊँगा। सत्संग का समय समाप्त हो गया। सभी साधकों को इस प्रश्नोत्तरी से बहुत लाभ हुआ है एवं सभी अपनी वृत्तियों को योगानुगामी बनाकर अपनी पर्ण कुटी में चले गये।

आशा है अन्य सभी जिज्ञासु पाठक गण भी इस प्रश्नोत्तरी को पढ़कर अपने मनों को योगानुगामी बनायेंगे एवं जीवन सफल बनायेंगे।

योगासन करने से पूर्व

(द्वारा : योग–पशिक्षण–केन्द्र श्री सिद्धगुफा, सवांई)

आसन करने से पूर्व साधक को किन–किन नियमों का पालन करना चाहिए यह सब हम अपने पिछले लेख में प्रकाशित कर चुके हैं। किन्तु फिर भी कुछ और आवश्यक पालनीय नियम है जिनका उल्लेख करना हम यहाँ नितान्त आवश्यक समझते हैं।

योगी का आहार–

हमारे शास्त्र कहते हैं 'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः'। अर्थात् आहार शुद्ध होने पर सतोगुण का विकास होता है। और सत्व शुद्धि होने से ध्रुवास्मृति प्राप्त होती है। सत्व शुद्धि ही समाधि की दात्री है। जिस प्रकार से योगानुष्ठान, आसन प्राणायाम आदि करने से बराबर विवेक ख्याति पर्यन्त ज्ञानदीप्ति होती चली जाती है, उसी प्रकार जिस मनुष्य का आहार–विहार पर पूर्ण संयम है, जो योगी अपने आहार को बिल्कुल सात्विक दैविक आहार बना लेता है, उसके शरीर में स्वभावतः ही दिव्य गुणों का प्रकाश हो जाया करता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के आहारों का वर्णन किया है और वे आहार सत्व प्रधान प्राणियों को, रज प्रधान प्राणियों को एवं तमोगुण प्रधान प्राणियों को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार प्रिय होते हैं।

सतोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार–

आयु सत्वबलारोग्य,
सुख प्राप्ति विवर्धना।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या,
आहाराः सात्विक प्रिया।।

अर्थात् आयु वृद्धि करने वाले, सत्व वृद्धि करने वाले, बल को बढ़ाने वाले, आरोग्यता देने वाले, सुख और प्रेम को बढ़ाने वाले, रसीले, चिकने, जिनकी शक्ति कायम रहने वाली है, जो हृदय की पुष्टि करने वाले हैं, अर्थात् जो स्वभाव से ही रुचिकर हैं ऐसे आहार सात्विक कहलाते हैं और वह सतोगुण प्रधान व्यक्तियों को ही अच्छे लगते हैं। जिन आहारों का लक्षण जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने ऊपर के श्लोक में किया है, वह सारे के सारे गुण गोघृत, दूध, मक्खन, मलाई आदि पेय पदार्थ, गेहूँ, चना, जौ या रसीले सेव, सन्तरा, अन्जीर और

मौसमी आदि फल; घीया, बथुआ, तोरई, चौलाई, पालक, मैथी आदि पत्ती के सागों और कन्दमूलों में होते हैं। यह सब सात्विक आहार हैं इनके सेवन से मन में सतोगुण का ही विकास होगा। बुद्धि पवित्र बनेगी और सतोगुण प्रधान को स्वभावतः यही गुण प्यारे भी लगेंगे।

रजोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार

कट्वम्ल लवणात्युष्ण

तीक्ष्ण. रूक्ष विदाहिनः।

आहारा राजसस्येष्टा

दुख शोकामय प्रदाः।।

अर्थात् कड़वे–करेले आदि, खट्टे आम की खटाई आदि, ज्यादा नमक वाले, अत्यन्त गरम जिनमें बहुत अधिक मिर्च पड़ी हों और रूखे व खुश्क तेज मिर्चों के पकोड़े आदि जो इसी प्रकार के जो शरीर में दरद देने वाले दुख और चिन्ता को पैदा करने वाले इस प्रकार के भोजन रजोगुण को बढ़ाने वाले होते हैं। जो रजोगुणी प्रधान व्यक्ति हैं ये सब भोजन उन्हें प्रिय होते हैं।

तमोगुण प्रधान मनुष्यों का आहार

यातयामं गतरसं

पूति पर्युषितं च यत्।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं

भोजनं तामसप्रियम्।।

अर्थात् रस रहित दुर्गन्ध युक्त, बासी, उच्छिष्ट, सड़े–गले भोजन तमोगुण को बढ़ाने वाला है और तामस व्यक्ति को ही यह प्रिय होता है। जैसे पहले दिन के बने हुए जिन पर से रात उतर चुकी है और गत रस हो जाते हैं, ऐसे भोजन तम प्रधान होते हैं। जितने जिस स्वभाव के व्यक्ति संसार में रहते हैं उनको उसी प्रकार का खान–पान, रहन–सहन प्रिय हुआ करता है। योगी के लिए सात्विक बन जाना बहुत आवश्यक है। जब तक उसके अन्दर सतोगुण की वृद्धि नहीं होती तब तक वह परम लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहेगा। इसके साथ–साथ इस बात का और ख्याल रखना आवश्यक है कि मन की शक्ति सब आहारों में परिवर्तन कर देती है। दूध, घी, फल, कन्दमूल, साग सब्जी ये सब भोजन सात्विक हैं। किन्तु कोई पाप कमाई करने वाला ऐसे आहार खिलाता है, तो उनमें उसके मन का असर रहा करता है। सुनते हैं ननकाना साहब में एक बार गुरु नानकदेव के सामने एक नवाब की ओर से घृत–पक्व सुमधुर भोजन आया और दूसरी ओर से दो सूखी रोटी कोई किसान लेकर आया। गुरु नानकदेव

ने वह रोटियाँ स्वीकार कर लीं किन्तु वह भोजन स्वीकार नहीं किया, लोगों ने उनसे हठ की कि क्या कारण है जो इतने पवित्र घी दूध के भोजन को आपने त्याग दिया, और सूखे जौ की रोटियों को आपने स्वीकार कर लिया। गुरु नानकदेव ने जवाब दिया इन सूखी रोटियों में दूध है और इस घृत पक्व भोजन में खून है, तमोगुण है। इसी लिए ऐसे तमोगुण प्रधान भोजन मुझे रुचिकर नही थे। यह कहकर उन्होंने पूड़ी उठाकर निचोड़ी और रोटी उठाकर निचोड़ी। रोटियों से दूध और पूड़ियों से खून गिरने लगा। लोगों ने इस चमत्कार का बड़ा आश्चर्य माना। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि जो भोजन करें वह नेक कमाई का हो तो सोने पर सुहागा होगा। इसके अतिरिक्त भगवान ने गीता में आज्ञा दी है—

युक्ताहार विहारस्य,
युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोघस्य,
योगोभवति दुःखहा।।

अर्थात् जिसका आहार–विहार युक्त है, जिनका सोना व उठना युक्त है और जिसकी हर चेष्टा नियमित होती है उनके लिए योग दुखों का नाश करने वाला है। इसलिए सात्विकी आहार के साथ–साथ युक्ताहार–विहार के नियम का पालन करना भी बहुत आवश्यक है। मनुष्य को भोजन खूब चबा चबाकर करना चाहिए। दूध को थोड़ा–थोड़ा करके पीना चाहिए, इससे साधकों को यह अनुभव होता रहे कि चबाया हुआ भोजन पेट में पहुँचते ही हजम हो चुका है। आधा पेट भोजन करे, आधा जल से और चतुर्थ भाग वायु के लिए खाली रहने दे। इस प्रकार का आहार हर व्यक्ति के लिए पूर्ण लाभदायक है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि नौजवान जो शीर्षासन आदि करता है और वह अपने आहार को इतना संयमित कर दे कि सहनशक्ति से बाहर हो जाये तो उसका परिणाम भी अवश्य खराब निकलता है। ऐसे व्यक्तियों को भूखा नहीं रहना चाहिए न उपवास करना चाहिए, उपरोक्त नियम उन परमार्थरत जिज्ञासुओं के लिए है जो हर समय स्वाध्यायशील हैं और समाहित चित्त हैं। नैत्यिक व्यायाम करने वाले नौजवानों के लिए उपयुक्त आहार करना व भूख को न मारना आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य व्रत—

भगवान जगदात्मा श्रीकृष्ण ने उपरोक्त श्लोक में 'युक्ताहार–विहारस्य' इस श्लोकों को कह करके युक्ताहार के साथ विहार शब्द का भी प्रयोग किया है। 'विहार' शब्द का अर्थ है, ऐश–आराम, रमण, इसलिए योगाभ्यासी के लिए यह भी एक आवश्यकीय कर्त्तव्य है कि जगदात्मा के शब्दों का पालन करने के लिए और अपने अभ्युत्थान के लिए अपने–आपको

विहार में डाले। युक्ताहार विहारस्य का अर्थ है, ठीक समय पर खाना और संयम से रहना। हमारे शास्त्रों में स्थान–स्थान पर ब्रह्मचर्य का बहुत बड़ा वर्णन मिलता है, ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ है–

ब्रह्माणि चरतुं शील–

मस्यास्तीत ब्रह्मचारी।

अर्थात् ब्रह्म के अन्दर विचरने वाली जिसकी आदत पड़ गयी है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है और दूसरे शास्त्रों में वीर्य को ब्रह्म माना है। भगवान शिव ने शिव संहिता में–

अहं बिन्दु रजः शक्तिः।

अपने–आपको बिन्दु स्वीकार किया है और बीज को शक्ति माना है इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी स्थान–स्थान पर वीर्य का ब्रह्मरूप से वर्णन किया है। अतः जब तक ब्रह्मरूप वीर्य शरीर में व्यापक होकर नहीं रहेगा तब तक मनुष्य योग–अभ्यास का अधिकारी बनता ही नहीं, उसमें भी वह हठाभ्यास से कोसों दूर रहता है। यदि कोई विलासी व्यक्ति अपने आपको हठयोगी बनाना चाहता है तो उसका वह प्रयास इसी प्रकार का प्रयास है जैसे कोई बालक हाथ में चन्द्रमा को पकड़ना चाहता हो। अतः योगासन करने वाला व्यक्ति यदि आसनों के उच्चतम परिणाम को देखना चाहता है तो उसके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना बहुत ही अनिवार्य है। ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं इसके विषय में हमारे आचार्य लिखते हैं–

कर्मणा मनसा वाचा

सर्वावस्था सु सर्वदा।

सर्वत्र मैथुन त्यागो

ब्रह्मचर्य प्रचक्षते।।

अर्थात् सब अवस्थाओं में मन, वाणी और कर्म से सर्वथा मैथुन–त्याग ही ब्रह्मचर्य है। मूत्राशय और मलाशय के ऊपर मणिपूरक में वीर्य का कोष रहता है। शरीर में व्यापक वीर्य इध र–उधर की कामुक तरंगों से द्रवित होकर वहाँ इकट्ठा हो जाता है और उस स्थान में इकट्ठा होने पर शरीर में पुनः व्यापक नहीं हो पाता है और कामोद्रेक से वह स्खलन की ओर ही जाता है तथा इस प्रकार के विचारों से वीर्य का कोष बार–बार खाली होता रहता है। अतः ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वालों के लिए यह परमावश्यक है कि वह वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए कोई–न–कोई व्यायाम अवश्य करते रहें, किन्तु अन्य व्यायामों की अपेक्षा जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं। यौगिक व्यायाम ही परमोत्कृष्ट हैं जिनके करने से शरीर की हर नाड़ी ठीक प्रकार से रस–रक्त के वहन करने वाली बनती है। योगासनों के करने से सभी

स्नायु सबल हो जाते हैं; छोटी–छोटी शिरायें भी अपने कार्य को ठीक करती हैं। यथोचित मात्रा में स्थान–स्थान पर रस–रक्त को पहुँचाती हैं। अत: योगासनों के द्वारा बहुत जल्दी वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कुछ आसन तो इस प्रकार के हैं जिनके करने से वीर्य–कोष की ओर न जाकर ऊर्ध्वगमन करता है। ऐसे ब्रह्मचारी कुछ दिनों में ही ऊर्ध्व रेतस बन जाते हैं। भगवान शिव ने शिव संहिता में स्पष्ट कर दिया है–

सिद्धे विंदौ महायत्ने

किन्न सिद्धयन्ति भूतले।

ऊर्ध्वरेता भवेद्यास्मात

तावत काल भयं कुत:।।

अर्थात् प्रयत्न करके जो लोग बिन्दु जय करते हैं, वह संसार में सभी कार्य कर सकते हैं। जिन्होंने अपने आपको ऊर्ध्व–रेतस बना लिया है, उनको कालभय उपस्थित नहीं होता। इसलिए योगासनों के अभ्यासी को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना भी उसका अपना आवश्यक कर्त्तव्य है। बहुत जगह पर इस प्रकार की घटनायें देखने में आती हैं कि जिन्होंने भोग के साथ योग को चाहा, उन्होंने अनायास अपनी मृत्यु को बुला लिया। ब्रह्मचर्य रहित विलासी व्यक्ति यदि योगासन का अभ्यास करते हैं तो 'अकर्णात् कर्मणं श्रेय'। के नियमानुसार कुछ–न–कुछ तो ठीक ही होगा किन्तु उत्कृष्ट फल की प्राप्ति उसी हालत में हो सकती है जब कि वह सावधानी से ब्रह्मचर्य का पालन करे। ब्रह्मचारी के शरीर में व्यापक हुआ वीर्य उसको अतुल बल देता है। योग–दर्शन में भगवान पतंजलिदेव ने स्पष्ट सीधे व सरल शब्दों में लिख दिया है–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:?

और उसका अर्थ करते हुए व्यास जी महाराज ने और भी ऊँचे शब्दों में प्रशंसा करके लिखा–

यस्य लाभाद प्रतिघान, गुणानु त्कर्षपति।

सिद्धश्च विनेयेषु ज्ञान माधातुं समर्थो भवतीति।।

अर्थात् ब्रह्मचारी अलौकिक गुणों को धारण करता है एवं सिद्ध हो जाने पर अपने शिष्यों में शक्तिपात करने की ताकत वाला हो जाता है। अत: जो लोग योगासन करते हुए और पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेंगे उनके शरीर में अलौकिक गुणों का प्रकाश हो जाना स्वाभाविक है। ब्रह्मचर्य व्रत का यह अर्थ नहीं कि जंगलों में घूमने वाले साधु जटाजूटधारी व्यक्ति ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन नहीं करता है तो गृहस्थी से बदतर हो जाता है और

गृहस्थी अपने गृहस्थ धर्म को निभाता हुआ ऋत्युकालानुगामी है और केवल मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए वीर्यदान करता है वह अवश्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। इसलिए यह नहीं समझना चाहिए कि ब्रह्मचर्य शब्द का प्रयोग घर-बार त्यागी, साधुओं के लिए ही किया गया है। प्रत्युत् गृहस्थी भी स्वदार-निरत होकर सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थ उपभोग करे तो वह अवश्य ब्रह्मचारी ही है। और इस प्रकार के ब्रह्मचर्य व्रत का फल उनका शरीर उनको बतलाता ही रहेगा।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन के लिए एक विशेष विधि-

प्राणायाम है

प्रथम विधि-

योगासन करने वाले साधक त्रिकोणासन को भली प्रकार जानते हैं। पहले साधारण रूप से खड़े हो जाए कि सहसा अपने प्राणों को नासिका रन्ध्रों से एक दम बाहर निकाल दें और निकाल देने पर नाभि के नीचे के भाग को जहाँ पर मल-मूत्र विसर्जनी नाड़ियाँ रहती हैं दाहिने हाथ से बायीं ओर से दाहिनी ओर मल करके प्राण को बाहर रोके हुए ही बायीं ओर को घुटना झुकाकर त्रिकोण आसन कर लें और उसके बाद धीरे-धीरे प्राण को भीतर ले जायें किन्तु भीतर रोकने की आवश्यकता नहीं है फिर प्राणों को समान गति से चलने दें इसी प्रकार से फिर दूसरी बार प्राण कोष को बाहर निकाल कर नाभि के नीचे के भाग फिर दाहिनी ओर का घुटना झुकाकर के त्रिकोण आसन की विधि से आसन करें। जब तक प्राण बाहर रहें तब तक इस आसन को कायम रखें और ज्यों ही घबड़ाहट शुरू हो और प्राण भीतर जाने लगें तो आसन भी छोड़ दें, साथ-साथ यह धारणा करते रहें कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ ऐसा करने से मूत्राशय और मलाशय के ऊपर रहने वाला वीर्य कोष भी अवश्य ऊपर की ओर आकर्षित हो जाएगा और इस क्रिया के करने वाला व्यक्ति उर्ध्व रेतस हो जाएगा।

उर्ध्व रेतस प्राणायाम की दूसरी विधि-

सिद्धासन में बैठ जाइये, सिद्धासन करने की विधि आगे आसनों में बताई जाएगी, वैसे साधारण रूप से अपने बायें पैर की एड़ी को गुदाद्वार के आगे लिंग नाल के नीचे दृढ़ता से जमा कर रखें और दूसरे पैर की ऐड़ी को लिंग नाल के ऊपर रखें, वह एड़ियाँ इस प्रकार रखी हुई हों जिनकी ग्रंथी भाग (टाकना) बिलकुल सममूत्र रूप से मिले हुए से हों, इस प्रकार जमाए रखें। नीचे की एड़ी को थोड़ा हटा करके रखें जहाँ यह एड़ी रखी जाती है वहीं से वीर्य वाहिनी नाड़ी जाती है, इसके दबाव से वह नाड़ी दब जाती है और इस नाड़ी के दब जाने से मन के

वासनिक आकर्षण कम हो जाते हैं। इस प्रकार अपने पैरों को जमाकर और दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर समकाय शिरोग्रीव की विधि के अनुसार शरीर को समसूत्रता में रखकर सीधा बैठ जायें। ठोड़ी को थोड़ा झुका कर छाती में लगायें, पेट भीतर की ओर खिंचा हुआ हो इसको सिंहासन कहा है। इस आसन से बैठकर ऊपर बतलाई विधि के अनुसार अपने सारे शरीर के प्राण को एकदम बाहर निकाल लें और उड्डयान–बन्ध लगाएं। उड्डयान–बन्ध के साथ–साथ बाहर मूत्र–द्वार का आकर्षण भी ऊपर की ओर स्वाभाविक हो जाएगा। प्राणों को बाहर की ओर रोके रखें। जिस समय प्राण बाहर रुका हुआ हो और उड्डयान–बन्ध लगाकर मूल–द्वार का उर्ध्वाकर्षण किया हुआ हो उस समय अपने मन में धारणा करके कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ, फिर उसके बाद जब घबराहट हो तो प्राण को अन्दर ले आयें किन्तु अन्दर रोकें नहीं। इस प्रकार के तीन प्राणायाम रोज करने से वीर्य–विकारों में बड़ा अनुपम लाभ होता है। और इसके साथ–साथ उपयुक्त खान–पान मिलता हो तो इन्हीं प्राणायामों को 20–21 तक भी बढ़ाया जा सकता है किन्तु हर साधक को अधिक मात्रा में प्राणायाम नहीं करना चाहिये। केवन मात्र वीर्य–विकार वाले रोगियों को रोग निवृत्ति के लिए दो या तीन प्राणायाम कर लेने चाहिए, ऐसा करने से उनको अवश्य अनुपम लाभ होगा।

ब्रह्म अथवा ईश्वर

जिस प्रकार सूर्योदय सब लोगों के लिए व्यवहार का कारण होता है, उसी प्रकार जो मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त–इन चार अन्तरिन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों की अपने–अपने विषयों में प्रवृत्ति का कारण है और सब उपाधियों से रहित तथा आकाश की भाँति सर्वव्यापी है एवं मनोहर सृष्टिकर्त्ता द्वारा सदा प्रत्यक्ष भाव से विद्यमान है–वही ब्रह्म किंवा ईश्वर है।

जैसे दर्पण, जल, तेल आदि वस्तुओं में सुख का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, किन्तु वह प्रतिबिम्ब मुख से भिन्न नहीं है–वही ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

–महात्मा श्री तैलंग स्वामी

योगेश्वर चरित्र माला

""प्रतीकोपासना""

(श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई द्वारा)

अनन्त श्री योगेश्वर प्रभु रामलाल जी के पूज्य पिता जी ज्योतिषाचार्य, परम यशस्वी, विद्वद्वर पं. गण्डाराम जी ने संवत् 1964 विक्रमी के मार्गशीर्ष मास में साठ वर्ष की अवस्था में अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया था। पूज्य पिता जी के स्वर्गवास के समय आनन्द कन्द पूज्य प्रभु जी की अवस्था केवल 19 वर्ष 8 मास थी। विरक्ति के भाव तो ह्रदय में शाश्वत बने ही रहते थे, इस घटना से प्रस्फुटित हुई वैराग्य की उत्तुङ्ग तरङ्ग ने आपको पुनः हरिद्वार की ओर अग्रसर कर दिया। प्रभु जी ने अज्ञात रूप से ही पहले हरिद्वार तथा तदुपरान्त ऋषिकेश के पंजाब सिन्ध क्षेत्र को पवित्र किया। संयोग से एक सज्जन जो कि श्री प्रभुजी के कमरे के समीपवर्ती कक्ष में ठहरे हुए थे, उनसे आपका परिचय हुआ। वह व्यक्ति दाम्पत्य बन्धन में आबद्ध था, किन्तु पूर्व संस्कारों के फलस्वरूप जब वह अपने श्वशुरालय से गृह पथ की ओर अग्रसर हो रहा था, तब मार्ग में ही वैराग्यातिरेक से आकृष्ट हुआ, किसी समर्थ गुरु की प्राप्त्याशा से तपोभूमि अद्रिराट् हिमालय की क्रोड़ में आश्रय पाने को प्रयत्नशील बना। वह जिज्ञासु रात्रि में भी चिर विलम्ब तक श्री प्रभुजी के साथ योग सम्बन्धी वार्तालाप में संलग्न रहा।

प्रातः काल पूज्य प्रभुजी ने अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर जब उस भद्र पुरुष के कक्ष की ओर दृष्टिपात् किया, तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऐसे साधक का अभी तक कक्ष द्वार भी बन्द ही पड़ा था। शनैः शनैः थोड़ा और विलम्ब हो जाने पर क्षेत्र में उपस्थित अन्य व्यक्तियों को भी कक्ष द्वार बन्द देखकर किसी अनिष्ट की आशंका बन गई। सुप्त व्यक्ति की निद्रा असंख्य कण्ठों की मृदु–कटु आकाश व्यापिनी कर्कश स्वर लहरियों का श्रवण करके भी भंग नहीं हुई थी, परिणामतः पुलिस की उपस्थिति में कक्ष द्वार भेदन करके वही दृश्य देखने को मिला जिसकी कि प्रबल आशंका प्रथम ही बनी हुई थी। अज्ञातमृत व्यक्ति की वस्त्रादि समस्त उपलब्धियों के सूक्ष्म निरीक्षणोपरान्त भी जब उसके परिवार आदि का कुछ बोध न हो सका, उपस्थित जन समूह ने ही उस व्यक्ति की अन्तिम संस्कार विधि का निर्वाह किया।

इस घटना से श्रीप्रभुजी की विरक्त भावनायें घृताहुति से प्रदीप्ति अग्नि शिखा के तुल्य जाज्वल्यमान हो उठीं। आप तत्क्षण की ब्रह्मपुरी की ओर बढ़ चले। आपका वह रात्रि विश्राम ब्रह्मपुरी में ही हुआ। तदनन्तर आपने एक ही रात्रि का विश्राम वशिष्ट गुफा में भी किया, और

तदुपरान्त क्षुधा–तृष्णा से पीड़ित होते हुए निर्जन–निबिड़–सघन और हिंसक जीव–जन्तुओं से व्याप्त झाड़–झंखाड़ों के कारण अगम्य उन्नत पर्वत शिखर पर और अब निर्भीकता से सिद्ध पुरुष के दर्शन हेतु तीन चार दिन तक सतत ही बढ़ते रहे। इस बीच न तो आप किसी महात्मा का ही दर्शन कर सके और न आपको कोई खाद्य वस्तु ही सुलभ हो सकी, केवल यत्र–तत्र उपलब्ध होने वाले निर्झर जल को ग्रहण करते हुए आप अपने दृढ़ संकल्प पर पूर्ण निष्ठा, तत्परता तथा विश्वास के साथ अग्रसर होते रहे। घोर कष्ट तथा साधना के इसी प्रकार और भी दो दिन व्यतीत हो जाने पर आपको सुन्दर फलों से लदा हुआ एक अज्ञात शोभन वृक्ष सुलभ हो सका। शरीर के अंग–प्रत्यंग पर जड़ता का आवरण फैलाने वाली अपनी तीव्र बुभुक्षा की शान्ति के लिए आपने उन फलों का आस्वादन किया, तथा कुछ फलों को आगे के सम्बल के लिए भी संगृहीत किया। फलों के द्वारा क्षुधा शान्ति के उपरान्त ज्यों ही आपने निर्झर के शीतल जल का पान किया–दुर्भाग्य से तत्काल ही आपको उद्दाम उदर पीड़ा का कष्ट वहन करना पड़ा। आपको पुनः पुनः उस रात्रि का विश्राम उसी प्रस्त्रवण तट पर करना पड़ा। उदर पीड़ा के इस कष्ट से आपके शरीर में जो शिथिलता व्याप्त हो रही थी वह विगत दिवसों की निराहारता के कष्टों से भी भीषण थी।

सम्पूर्ण रात्रि की तीव्र वेदना के उपरान्त प्रातः काल जब भगवान् भास्कर संसार में नव चेतना का स्फुरण कर रहे थे, तब श्री प्रभु जी के शरीर में चैतन्य की झलक प्रस्फुटित हो चली। अपने महान् लक्ष्य का स्मरण करते ही आपके शरीर में विशेष क्रान्ति का आभास हुआ, अपने उसी स्रोत के निर्मल जल में स्नान करके अपने नित्य कृत्यों का सम्पादन किया। पुनः उन्हीं फलों का भक्षण किया, और अपने लक्ष्य पर बढ़ चले। शनैः शनैः वे फल श्री प्रभुजी को अनुकूल हो गये, और उनके सतत भक्षण से आपके शरीर में पुनः तेज बल का अभूतपूर्व संचार हो गया। जितेन्द्रिय महान् पुरुषों का लक्ष्य ही कठिनाइयों पर विजय पाकर संसार को नूतन पथ प्रदर्शित करना होता है, क्योंकि–

वह पथ क्या पथिक कुशलता क्या,
जिस पथ में बिखरे शूल न हों।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या,
यदि धारायें प्रतिकूल न हों।।

पूज्य प्रभुजी अगणित बाधायें सहकर भी सतत् ही अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे, अकस्मात् एक रात्रि में घनघोर गर्जन–तर्जन के साथ भीषण घटा उमड़ आई। भीषण वात वृष्टि तथा उल्का–पात के साथ ही साथ होने वाली वर्षोपल बौछार से भी श्री प्रभु जी लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए। आप कई–कई दिन निराहार रहकर भी आत्म–चिन्तन में लीन हुए, क्रमशः–बढ़ते ही जा रहे थे। लाहौर निवासी गंगाराम नामक एक विरक्त तपस्पृही सज्जन, जो सद्गुरु की खोज में भटक रहे थे, संयोग से उनकी श्री प्रभुजी से भेंट हुई। दोनों पथिक

द्विगुणित उत्साहपूर्वक असंख्य बाधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए पुनः पाँच दिन तक विविध प्रकार की योग सम्बन्धी चर्चायें करते हुए आगे के हिमाच्छादित उन्नत शिखरों की ओर बढ़ते ही रहे। एक रात्रि में जब आप दोनों हिंसक जीवों के किसी आकस्मिक प्रहार के भय से वृक्षारूढ़ हुए समय व्यतीत कर रहे थे, तब लगभग एक मील की दूरी पर आपने प्रज्जवलित अग्नि को देखकर अनुमान लगाया कि वहाँ पहुँचने पर उन्हें अवश्य ही किसी महात्मा के दर्शन सुलभ हो सकेंगे। तत्काल ही आपने प्रज्जवलित अग्नि को लक्ष्य कर निश्चित स्थान को प्राप्त कर लिया, और गुहाद्वार तथा गढ़े हुए चिमटे से अपनी कल्पना को साकार हुई जान कर शान्त भाव से सन्त मिलन की प्रतीक्षा करने लगे। ब्रह्ममुहूर्त में महात्मा जी का साक्षात्कार हुआ, तथा शिष्टाचार के उपरान्त उन्होंने दोनों आगन्तुकों को अद्भुत भक्ति सम्पन्न एक लोटा यह कहकर समर्पित किया कि आप लोगों को जो भी आवश्यकता होगी, उसे यह पूर्ण करेगा।

लोटा भेंट करने के उपरान्त जब महात्मा जी प्रस्थान कर गये तो गंगाराम जी ने उस लोटे से चरस तथा तम्बाकू प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता से उनका सेवन किया। अन्य भी अभीष्ट वस्तुयें उस लोटे से उपलब्ध हो गईं, जिनकी प्राप्ति कर गंगाराम जी के हर्षातिरेक की सीमा नहीं थी। दूसरे दिन पुनः ब्रह्ममुहूर्त में जब श्री प्रभुजी की महात्मा जी से भेंट हुई तो उनके साथ होने वाले वार्तालाप के आधार पर ज्ञात हुआ कि वे प्रतीकोपासक थे। श्री प्रभुजी ने प्रतीकोपासना को जिसका कि लक्ष्य केवल सिद्धियाँ प्रदान करना है उपेक्षा की दृष्टि से देखा क्योंकि आपका लक्ष्य तो योग की पूर्ण स्थिति को प्राप्त करना था। श्री प्रभुजी ने इस विषय में श्री गंगारामजी से भी प्रश्न किया, किन्तु वे किसी भी दशा में लोटे को छोड़कर जाने को उत्सुक नहीं थे।

आनन्द कन्द श्री प्रभु जी अपनी लक्ष्य पूर्ति के लिए अकेले ही पुनः अपने पथ पर अग्रसर हो गये और स्वेच्छा से काल तक तपोधनी महात्माओं का सत्संग करके जब आप उसी मार्ग से लौट रहे थे, तो आपने देखा कि वे ही लोटे वाले महात्मा चिमटा धारण किये हुए, विकराल रुद्ररूप बनाये गंगाराम की प्रताड़ना करते हुए उसका अनुसरण कर रहे थे। पूज्य प्रभु जी की मध्यस्थता में महात्मा जी ने गंगाराम की धृष्टता का निवेदन करते हुए कहा कि यह दुष्ट लोटा लेकर भाग खड़ा हुआ था। मार्ग में उसके द्वारा लोटे से कोई ऐसी याचना की गई जो कि निष्फल रही। परिणाम स्वरूप वह पुनः लौट आया और अब उसी दुष्टता के आधार पर गंगाराम त्याज्य तथा दण्डनीय बना हुआ था। श्री प्रभुजी की आज्ञा होने पर महात्माजी ने गंगाराम जी को क्षमा कर दिया और पूज्य प्रभुजी से अपने आप ठहरने का आग्रह किया, किन्तु श्री प्रभुजी का लक्ष्य प्रतीकोपासना न होकर योग की उच्च भाव–भूमि था, अतः आपने महात्मा जी के समक्ष अपना लक्ष्य प्रगट करके उनके आश्रमों का परित्याग कर दिया।

उसी रात्रि में ध्यान समाधिस्थ होने पर श्री प्रभुजी को प्रेरणा हुई कि नेपाल से आगे हिमालय की क्रोड़ में आपको उद्देश्य पूर्ति करने वाले महाप्रभु सदाशिव स्वयं ही सुलभ हो

जावेंगे। तदनन्तर आप वशिष्ट गुहा, ब्रह्मपुरी तथा ऋषिकेश होते हुए हरिद्वार पहुँच गये। वहाँ आपका साक्षात्कार श्री जयराम नामक व्यक्ति से हुआ, जो कि आपके पूज्य पिताजी के कृपा पात्र शिष्य थे। जयरामजी ने प्रभुजी को प्रणाम करके जो भी धन उनके पास था, उसे श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में अर्पित करके विनीत प्रार्थना की कि प्रभुजी कृपा करके उसे अपने चरण कमलों में आश्रय प्रदान कर दें। परमानन्द धन पूज्य प्रभु जी ने वत्सलता पूर्वक उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तदनन्तर आप दोनों ने काठगोदाम की एक धर्मशाला को पवित्र किया। दैवयोग से इस समय श्री प्रभुजी के पास केवल तीन पैसे अवशिष्ट थे। अपने तत्कालीन आवश्यकता पूर्ति के लिए जयराम के द्वारा उन पैसों से कागजों का क्रय करके इस प्रकार का हस्तलिखित विज्ञापन प्रकाशित किया कि एक ज्योतिषी तथा वैद्य अमुक धर्मशाला में विश्राम कर रहे हैं, जो असाध्य रोगों की भी चिकित्सा करेंगे, तथा सभी प्रकार के फलादेशों का संकेत करेंगे। पीड़ित तथा जिज्ञासु सज्जन अवसर से लाभ उठावें। जयराम जी ने नगर के प्रायः सभी मुख्य स्थानों पर उपर्युक्त विज्ञापन चिपकाकर उनका पर्याप्त प्रचार कर दिया।

शनैः शनैः श्री प्रभुजी के उपर्युक्त विज्ञापन की चर्चा प्रायः पूरे ही नगर में व्याप्त हो गई और विविध प्रकार के असाध्य रोगियों की भीड़, तथा जन्म पत्रियों के ढ़ेर ने श्री प्रभुजी को पूर्णतया व्यस्त कर दिया। रोगियों के स्वास्थ्य लाभ की चर्चा तथा ज्योतिष के फलादेशों की अलौकिकता की ख्याति से श्री प्रभुजी का यश बहुत ही तीव्र गति से व्याप्त हो गया, और साथ ही साथ आप के आवासादि की सुव्यवस्था हो गई, तथा अपार धनराशि का आपके समक्ष ढ़ेर लग गया। श्री प्रभुजी के विमल यश की गाथाएँ सुनकर काठगोदाम नरेश पूज्य प्रभुजी को अपने राज महल में लिवा ले गये। आपके विमल तेज तथा अद्‌भुत आकर्षण से प्रभावित होकर राजमाता ने भी उनसे दीक्षा ग्रहण की।

कालान्तर में श्री प्रभुजी ने काठगोदाम से प्रस्थान करने का निश्चय किया, जिसे जान कर नृप विह्वल हो उठे, तथा श्री प्रभुजी से पुनः पुनः वहीं निवास करने की विनती करने लगे। श्री प्रभुजी का संकल्प अटल था, अतः उन्होंने नरेश को समझा–बुझाकर शान्त करने का प्रयास किया तथापि नृप का आग्रह बना ही रहा। अकस्मात् एक दिन श्री प्रभुजी अज्ञात रूप से मुरादाबाद पहुँच गये। सूचना पाकर काठगोदाम नरेश भी राजमाता सहित मुरादाबाद पहुँच गये और बहु विधि अनुनय–विनय पूर्वक पूज्य प्रभुजी से काठगोदाम चलने का आग्रह किया। श्री प्रभुजी किसी भी स्थिति में पीछे पग हटाने को प्रस्तुत नहीं थे। आपने नरेश को सदुपदेश देकर कृतार्थ किया, तथा उदारता पूर्वक विशेष कृपामय आशीर्वाद देकर लौट जाने का आदेश प्रदान किया।

युक्तयोगी कौन ?

" यस्मिन ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति सेया योग विद्या "

जिस विद्या के जान लेने पर सभी कुछ जान लिया जाता है वह हमारी योग विद्या है। इस रास्ते पर चलकर ही मनुष्य सर्वज्ञाता बन सकता है। परमाणु **'परमगहत्वान्तो ऽस्यवशीकारः'** परमाणु से लेकर महत्तत्व पर्यन्त योगी का अधिकार होता है। योगी को "कर्तुमकर्तुम" बिगड़े को फिर बना दे और **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम'** की शक्ति वाला कहते हैं। गीता में भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने युक्त योगी के लक्षण इस प्रकार बताये है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।

युक्तइत्युच्यते योगी सम लोष्टाश्म–कांचन:।

अर्थात् जो ज्ञान–विज्ञान–तृप्तात्मा हो, कूटस्थ हो, जितेन्द्रिय हो, मिट्टी, पत्थर व सोना जिसकी दृष्टि में समान हो वह युक्त योगी कहलाता है। ये पाँच बातें युक्तयोगी में होनी चाहिए। ज्ञानतृप्तात्मा उसे कहते हैं जिसने प्रकृति के सारे नियमों व विश्लेषणों को समझकर उन पर अधिकार कर लिया है अर्थात् जिसने महाभूतों पर, तन्मात्राओं पर इन्द्रियों पर अधिकार कर लिया हो, वह ज्ञान तृप्तात्मा कहा जाता है।

–योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/18-20 JUNE 2019

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

□□□□□□

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते॥

जिसमें अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं और अन्त में लीन होते हैं- उसको जो एक साथ जान लेता है, वह सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान करके मृत्यु के भय को पार कर अमृत-अविनाशी मोक्ष-पद को प्राप्त कर लेता है।